इस पुस्तक के विषय में . . .

भक्ति एक जीवन शैली है । अधिकांश मानवों ने आज क्रोध, काम, लोभ, घृणा, मोह को अपना सामान्य स्वभाव मान लिया है । जब व्यक्ति की मन:स्थिति तामसिक होती है तो वह जीवन में इन अभिव्यक्तियों के रूप में प्रकट होती है । एक भक्त की मानसिकता सात्विक होती है । वह अपने जीवन में प्रकाश, शान्ति और स्थिरता का सतत अनुभव करता है । भक्ति एक उपलब्धि है। मन्दिर में घंटी बजाना, पूजा–पाठ करना आदि भक्ति प्राप्त करने के साधन (उपाय) हैं, यह भक्ति नहीं है । भक्ति चाहे निराकार की हो अथवा साकार की, उसका लक्ष्य है तमस से सत्व की ओर बढ़ना । एक भक्त दु:खों के रहते हुए भी अपने अन्तर में सुख, शान्ति, आनन्द और प्रसन्नता का सतत अनुभव करता है । एक भक्त के लिए दु:ख क्षणिक और सुख शाश्वत होता है । एक सांसारिक व्यक्ति के लिए सुख क्षणिक और दु:ख शाश्वत होता है । अभिमान भक्ति मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है । काम, क्रोध, लोभ, भ्रम एवं भौतिक प्रेम भक्ति के शत्रु हैं ।

सत्संग - II

(भक्तियोग, कर्म और कर्मयोग, 2011 गुरुपूर्णिमा)

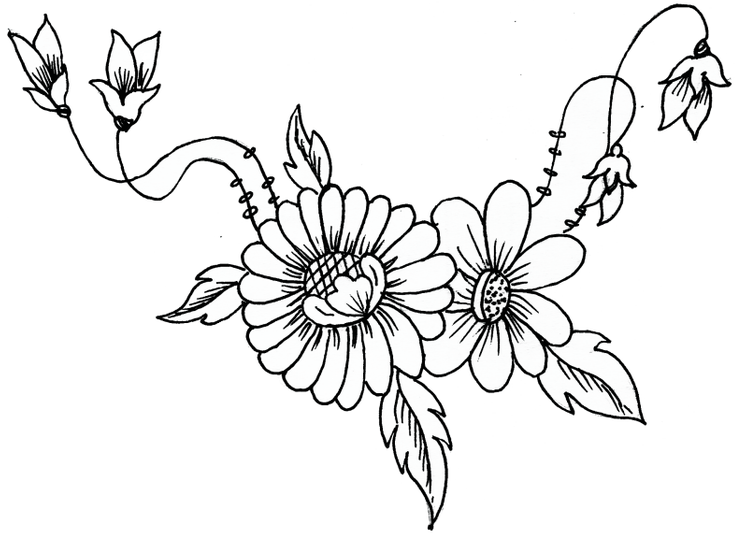

''दुख से अद्वितीय शक्ति प्राप्त होती है और मानव संघर्ष करना सीखता है ।
एक दु:खी व्यक्ति ही अध्यात्म और ईश्वर की ओर जाता है ।''

– स्वामी निरंजन

प्रीति अग्रवाल

(ज्ञान यज्ञ वैलफेयर सोसायटी प्रकाशन)

व्यावहारिक भक्ति

आज आदमी बिल्कुल अकेला है । ढूँढ़ता है वह सहारा जगत के झूठे सम्बन्धों में । नहीं जानता वह स्वयं के आन्तरिक ईश्वर को जो है उसके अन्दर विद्यमान नेकी, ईमानदारी ओर सच्चाई के रूप में । खो गया है उसका आत्मविश्वास जगत की इस जादुई चकाचौंध में । भूल बैठा है वह नैतिकता को । भूल बैठा है वह प्यार और बाँटने के सिद्धान्त को । बन बैठा है वह स्वार्थी और रम रहा है केवल और केवल अपने परिवार में । खुल जाएँगे जिस रोज़ ताले उसके बन्द हृदय के, बनेगा वह उदार और लुटाएगा दौलत प्यार की, स्नेह की । बनेगा एक उदाहरण इस जगत में और करनी से अपनी अनेकों का मार्गदर्शन करेगा । करनी का ही है महत्व आज के युग में । जिस रोज़ अपनाएगा मानव पथ सेवा, प्यार और दान का, हो जाएगा वह मालामाल प्रभु की असीम सम्पदा से । है यह रहस्य ऐसा जो देगा वही पाएगा, जो चलेगा इस पथ पर वही जान पाएगा । यही है भक्ति व्यावहारिक आज के युग में, जो समझ गया वह इस भवसागर से तर गया ।

यह 19वीं ज्ञान पुष्पमाला, मैं परमगुरु श्री स्वामी शिवानंद के ज्ञान यज्ञ में सादर समर्पित करती हूँ ।

प्रथम संस्करण : 2011
(2000 प्रति ज्ञानयज्ञ हेतु निःशुल्क वितरणार्थ)

कवर : सुश्री प्रांजलि द्वारा रेखांकित

आभार

मैं समस्त दानदाताओं की आभारी हूँ जिन्होंने लोक कल्याण के इस पुनीत कार्य में अपना महत्वपूर्ण सहयोग दिया है । परमपूज्य श्री स्वामी शिवानन्द का अनुग्रह एवं भगवत् कृपा सब दानदाताओं पर सदा बनी रहे । उन्हें स्वास्थ्य, सुख, शांति एवं दीर्घायु प्राप्त हो तथा उनकी आध्यात्मिक उन्नति हो ।

कर्मयोग

''समभाव से कर्म करने को कर्मयोग कहा जाता है । कर्म करते हुए फल की आशा होना सामान्य बात है । परन्तु स्वयं को सफलता अथवा असफलता से मत जोड़ो । अपनी इच्छाओं के पीछे पागल मत बन जाओ । जिस प्रकार एक ऊँचे पेड़ की कटाई, छटाई करनी पड़ती है, उसी प्रकार अपनी इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं, वासनाओं को धीरे–धीरे कम करते जाओ । मन को स्वार्थ से परमार्थ की ओर मोड़ते जाओ । परमार्थ के द्वारा आप आत्मा की व्यापकता और ब्राह्मी वृत्ति का सतत अनुभव कर सकते हैं । अंहकार एक नकारात्मक वृत्ति है जो वासना से प्रकट होती है, इसे नम्रता की तलवार से काटते जाओ । अपने लिए कर्म करते हुए, दूसरों के उत्थान के लिए भी कार्य करते जाओ । यही कर्मयोग है । यह एक आन्तरिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा आप उच्च चेतना का सतत अनुभव कर सकते हैं । '' – स्वामी निरंजन

<u>सत्संग प्रेमियों के लिए :</u>

विभिन्न सत्संगों, लेखों एवं पुस्तकों के लिए मेरे वेबसाइट पर लॉग ऑन करिए ।

www.pritiyogawelfare.com

सत्संग - II

(भक्तियोग, कर्म और कर्मयोग, 2011 गुरुपूर्णिमा)

स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के संग
(गंगादर्शन विश्व योगपीठ, मुंगेर में योग दृष्टि सत्संग
श्रृंखला से उद्‌भासित)

प्रीति अग्रवाल
(ज्ञान यज्ञ वैलफेयर सोसायटी)

AN APPEAL

This book is being written by divine inspiration of Param Guru Swami Sivananda and infinite blessings of Paramhansa Swami Satyananda Saraswati. Paramhansa Swami Niranjanananda Saraswati (Paramacharya of world's first Yoga University "Bihar yoga Bharti") is guiding this writing. This is the 19th book of Jnana Yajna (Gyan Yagya) series of Param Guru Swami Sivananda in Steel City of Bhilai. The main aim of publishing these books is to disseminate spiritual knowledge for public health and welfare. For paving the spiritual development of common man, these books are being distributed free of cost all over the world through various devotees by hand, post and internet regularly. These books are being kept by various Libraries all over the world. A set of these books is being kept in Sivananda Ashram, Rishikesh. Five sets of these books are being kept in Bihar School of Yoga, Munger.

These books are being donated at nearly 50 libraries and 8 old age homes all over the world.

"Dissemination of spiritual knowledge ensures eradication of all evil qualities" - Param Guru Swami Sivananda.

"Gyan Yagya is much better than Dravaya Yagya" Geeta IV, 33

"The Punya (Merit) of dissemination of spiritual knowledge is 16 times greater than Punya of other charities " - Sri Mad Bhagvat Maharishi Ved Vyas.

An Opportunity to take an active part in this Gyan Yagya

Advertisements are accepted for publishing in this book. To publish 2000 copies of one book approximately Rs.25,000 is required. I request donors to contribute generously for this noble mission.

Please address all correspondence and donations by draft, money order or account payee cheque in the favour of **Gyan Yagya Welfare Society** and post to the following address :

PRITI AGGARWAL
Qr 2A, Street 24, Sector 9, Bhilai 490006, Distt-DURG (C. G.), India

---

Each of these books is being sent to Rikhia Peeth and Sivanand Ashram offered as Jnana Flower Garland at the lotus feet of my Param Guru Swami Sivananda.

एक अपील

यह पुस्तक परमगुरु स्वामी शिवानन्द की दिव्य प्रेरणा और परहंस स्वामी सत्यानंद के असीम अनुग्रह की परिणिति है । विश्व के प्रथम योग विश्वविद्यालय बिहार योग भारती के परमाचार्य स्वामी निरजंनानंद सरस्वती इस लेखन का मार्गदर्शन कर रहे हैं । परम गुरु स्वामी शिवानंद के ज्ञान यज्ञ की यह 19 वीं कड़ी है, इस्पात नगरी भिलाई नगर में, जिसका मुख्य उद्देश्य है आध्यात्मिक ज्ञान का नि:शुल्क वितरण लोक स्वास्थ्य एवं लोक कल्याण के लिए । इस पुस्तक का वितरण इन्टरनेट से, डाक से अथवा अनेक भक्तों के माध्यम से देश विदेश में नियमित रूप से किया जा रहा है । परमगुरु स्वामी शिवानन्द के ऋशिकेश आश्रम के पुस्तकालय में इन पुस्तकों का एक सैट रखा गया है । इन पुस्तकों के पांच सेट ''बिहार स्कूल ऑफ योगा'' मुंगेर के पुस्तकालय में रखे गए हैं । विश्व के लगभग 50 पुस्तकालयों एवं 8 वृद्धाश्रमों में इन पुस्तकों को भेंट स्वरूप दिया गया है ।

''ज्ञान का वितरण सर्वोत्तम सेवा है । ज्ञान के वितरण से समस्त दुर्गुणों का निराकरण सम्भव है''–परमगुरु स्वामी शिवानन्द

''ज्ञानयज्ञ द्रव्य यज्ञ से अत्यन्त श्रेष्ठ है'' (गीताIV,33)

''आध्यात्मिक ज्ञानदान का पुण्य दूसरे दान के पुण्य से 16 गुणा अधिक है ।''

– महर्षि वेदव्यास (श्री मदभागवत्)

इस ज्ञानयज्ञ में सक्रिय भाग लेने का एक सुअवसर

इस पुस्तक में प्रकाशनार्थ विज्ञापन स्वीकृत हैं । जानकारी लिखकर प्राप्त करें । इस पुस्तक की 2000 प्रतियाँ छपवाने में लगभग 25,000 रूपये तक का खर्च आ रहा है । दानदाताओं से प्रार्थना है कि वे अपना सहयोग दें और दान की राशि मनीआर्डर, एकाउंट पेयी चेक अथवा ड्राफ्ट के द्वारा ज्ञान यज्ञ वैलफेयर सोसाइटी के नाम से निम्नलिखित पते पर भेजें ।

प्रीति अग्रवाल

क्वाटर नं.–2ए, सड़क–24, सेक्टर–9, भिलाई–490009, जिला–दुर्ग,छत्तीसगढ़, भारत

यह प्रत्येक पुस्तक परमगुरु स्वामी शिवानन्द के चरणों में ज्ञान पुष्पमाला के रूप में अर्पित करने के लिए रिखियापीठ एवं शिवानन्द आश्रम भेजी जा रही है ।

परमहंस स्वामी निरजंनानन्द सरस्वती

स्वामी निरंजन का जन्म 14 फरवरी सन् 1960 में भारत के एक छोटे से प्रान्त राजनाँदगाँव में हुआ । उनकी माता जी का नाम स्वामी धर्मशक्ति और पिता जी का नाम स्वामी सत्यव्रत है । अनेक वर्ष पूर्व सत्यव्रत जी का देहान्त हो गया । उनकी माता जी बिहार स्कूल ऑफ योग (मुंगेर, बिहार में स्थित है) में रहती हैं । उनके गुरु परमहंस स्वामी सत्यानंद हैं । अपने गुरुजी के योग के प्रचार प्रसार में उन्होंने एक वृहद भूमिका निभाई है ।

स्वामी निरंजन एक दिव्य व्यक्तित्व के स्वामी हैं । स्वामी सत्यानन्द के मानस पुत्र होने का गौरव उनको प्राप्त हुआ है । 6 वर्ष की छोटी उम्र में ही वे आश्रम आकर अपने गुरु के साथ रहने लगे थे । 10 वर्ष की उम्र में उन्हें दशनामी संन्यास परम्परा के अन्तर्गत संन्यास दिया गया । 11 वर्ष की अल्पायु में वे विदेशों में योग सिखाने के लिए चले गए । सन् 1982 तक वे विदेशों में योग सिखाते रहे एवं इस दौरान उन्होंने अनेक योग केन्द्रों की स्थापना भी की ।

सन् 1983 में अपने गुरु के आदेशानुसार वे भारत वापस आए और बिहार स्कूल ऑफ योग के अध्यक्ष नियुक्त किए गए । सन् 1990 में उन्हें परमहंस संन्यास परम्परा की दीक्षा दी गई । सन् 1995 में उन्हें स्वामी सत्यानन्द ने अपना उत्तराधिकारी घोषित किया । 1993 में ही उन्होंने अपने गुरु की संन्यास स्वर्ण जयंती के उपलक्ष्य में विश्व योग सम्मेलन का आयोजन किया । 1994 में उनके मार्गदर्शन में योग विज्ञान के उच्च अध्ययन के संस्थान बिहार योग भारती की स्थापना हुई । उन्होंने 1995 में मुंगेर में बाल योग मित्र मंडल के द्वारा बच्चों को योग सिखाने का शंखनाद किया । सन् 2000 में उन्होंने बिहार योग पब्लिकेशन ट्रस्ट की स्थापना की। सन् 2009 तक उन्होंने विश्व के अनेक देशों में अपने गुरु के योग प्रचार के मिशन को दिशा दी । सन् 2009 में उन्हें स्वामी सत्यानंद ने संन्यास जीवन के नूतन पक्ष में रहते हुए मुंगेर में संन्यास पीठ स्थापित करने का आदेश दिया । सन् 2010 जनवरी से मुंगेर में उन्होंने हर माह

विभिन्न विषयों पर सत्संग श्रृंखला का शुभारम्भ किया । इस सत्संग श्रृखला को योगदृष्टि सत्संग श्रृंखला का नाम दिया गया है ।

अनेक वर्षों विदेश में रहने के कारण स्वामी जी के सत्संगों में पारम्परिकता के साथ–साथ आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रचुरता है । प्रत्येक विषय को एक वैज्ञानिक यौगिक दृष्टिकोण प्रदान करते हुए ये सत्संग अत्यधिक सरल और व्यावहारिक हैं । संसार में रहते हुए एक गृहस्थ इन सत्संगों के द्वारा अपने जीवन का आध्यात्मिक उत्थान सहज ही कर सकता है । सन् 2010 के शतचण्डी यज्ञ में रिखियापीठाधीश्वरी स्वामी सत्संगी ने स्वामी निरंजन को '' प्रिंस चार्मिंग ऑफ हार्टस'' दिलों के मनमोहक राजकुमार, कह कर सम्मानित किया । अध्यात्म के इतने उच्च शिखर पर पहुँचने के बावजूद भी स्वामी जी एक साधारण आदमी की सांसारिक समस्याओं को सुलझाने में मदद करते हैं । उनके व्यक्तित्व में एक दिव्य आकर्षण है, अद्‌भुत संवेदनशीलता है जो करोड़ों भक्तों को उनकी ओर आकर्षित करती है । या यूँ कहा जाए कि वे भक्तों को अपने सरल बाल सुलभ व्यवहार से मोहित कर लेते हैं । जन्म से लेकर आज सन् 2011 तक वे अपने गुरु के आदेशों का पूर्ण निष्ठा से पालन कर रहे हैं । अपना जीवन उन्होंने ''बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय'' के लिए ही समर्पित किया है। धन्य हैं ऐसे सन्त जो धरती पर जन–कल्याण के लिए ही अवतरित हुए हैं । मैं गौरवान्वित हूँ कि मुझे उनके सान्निध्य एवं मार्गदर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ । यद्यपि वे आकाश के एक सितारे हैं और मैं उनके चरणों की धूल हूँ, फिर भी मैंने उन्हें अपने आदर्श के रूप में चुना है । यदि एक कण भी उनके व्यक्तित्व का मैं अपना पाई तो मैं अपना जीवन इस धरा पर सार्थक समझूँगी ।

सब में भगवान को देखो – स्वामी शिवानन्द जब हम समस्त चराचर जगत में भगवान को देखने का अभ्यास करते हैं तो क्रोध जैसा अवगुण तो स्वत: ही दूर हो जाता है । यह जगत उस ईश्वर की क्रीड़ा स्थली है । अत: हर कार्य उसी की इच्छा से होता है । इस भार को गहरा करने से व्यक्ति क्षमा के दिव्य गुण को धारण करने में सक्षम होता है ।

ज्ञान यज्ञ वैलफेयर सोसायटी के बारे कुछ शब्द –

परमगुरु स्वामी शिवानन्द के दिव्य अनुग्रह से मुझे उनके वृहद् ज्ञान यज्ञ में एक बूँद बनने का सुअवसर प्राप्त हुआ । यह सोसायटी एक दातव्य संस्था है जिसका मुख्य उद्देश्य है – आध्यात्मिक ज्ञान का प्रचार एवं प्रसार नि:शुल्क । यह संस्था पूर्णतया धर्म निरपेक्ष है और सभी सन्तों को समान आदर देने में विश्वास रखती है । परमहंस स्वामी सत्यानन्द के आर्शीवाद से इस संस्था का गठन, परमहंस स्वामी निरंजनानन्द के अपरोक्ष निर्देशन से किया गया है ।

आधुनिक युग में मानव पीड़ित है भौतिकवाद की अधिकता के कारण । इन पुस्तकों में विभिन्न सन्तों की शिक्षाओं का सरलीकरण करते हुए एक प्रयास किया गया है मानव को उसके अपने अन्दर के ईश्वरतत्व से जोड़ने का । संसार में रहते हुए व्यक्ति आज भी एक दिव्य जीवन यापन कर सकता है, यही इस ज्ञान यज्ञ का अंतिम उद्देश्य है ।

ये लेख सत्य अनुभवों पर आधारित हैं, अत: प्रत्येक व्यक्ति इनसे प्रेरणा लेकर एक प्रयोग कर सकता है और अपना उत्थान स्वयं कर सकता है ।

सुख, शांति और प्रसन्नता तो तेरे बस में है ऐ मानव । कहाँ तू ढूँढ़ता है उसे संसार के विषय भोगों में ? कहाँ तू ढूँढ़ता है उसे झूठे और धोखेबाज़ ठगों के दरबार में ? करनी है सेवा निष्काम थोड़ी सी । करना है दान थोड़ा सा नि:स्वार्थ भाव से ।

करना है प्यार थोड़ा सा अनजानों को, वृद्धों, गरीबों और जरूरतमंदों को । यही है सार सब धर्मों का । यही है सार सब पन्थों का ।

एक अनुरोध

पाठकों से नम्र निवेदन है कि वे पढ़ने के पश्चात् इन पुस्तकों को आस–पास के पुस्तकालयों में दे दें ताकि, अनेक लोग इस साहित्य को पढ़ सकें ओर लाभान्वित हो सकें ।

प्रस्तावना

आज योग को जन–साधारण ने केवल शारीरिक अभ्यासों तक सीमित कर दिया है। हमारे ब्रह्मज्ञानी गुरुओं ने योग की विभिन्न शाखाओं को जनकल्याण के लिए प्रचारित और प्रसारित किया है । परमगुरु स्वामी शिवानन्द का समन्वय योग ज्ञान (मस्तिष्क), कर्म (हाथ) और भक्ति (हृदय) को समान महत्व देता है । उन्होंने सेवा को अपने जीवन का मूल मन्त्र बनाया। आज कलियुग में जब व्यक्ति धन की चकाचौंध के पीछे पागलों की तरह दौड़ रहा है, उसे कहाँ समय है मन्दिर जाने का अथवा स्वाध्याय करने का ? प्रेम के साथ नि:स्वार्थ भाव से दूसरों की सेवा करते हुए व्यक्ति धीरे–धीरे अपने संचित कर्मों का क्षय करता है, आन्तरिक शुद्धि के द्वारा अपने अन्दर के प्रकाश की झलक प्राप्त करता है । शनै: शनै: उसका हृदय दया, करुणा और क्षमा जैसे दिव्य गुणों से आपूरित हो जाता है । ऐसा व्यक्ति एक दिव्य जीवन जीता है और अपने कर्मों एवं व्यवहार से अनेकों को प्रेरित करता है । दिव्य जीवन (अच्छे बनो, अच्छा करो) के द्वारा इसी धरा पर गृहस्थ आश्रम में भी व्यक्ति असीम सुख, शान्ति और आनन्द का अनुभव कर सकता है ।

– प्रीति अग्रवाल

गुरु कृपा / ईश्वर कृपा

गुरु एवं ईश्वर कृपा प्राप्त करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को पात्रता अर्जित करनी आवश्यक है। गुरु / ईश्वर कृपा तो सतत बरस रही है ; परन्तु हम उसे तभी प्राप्त कर सकते हैं जब हमारा व्यक्तित्व काम, क्रोध, लोभ एवं अंहकार जैसे दुर्गुणों से रिक्त होता है । एक खाली घड़ा जो वर्षा ऋतु में सीधा रखा रहता है, वर्षा के पवित्र जल को ग्रहण करने में सक्षम होता है । सन्तोष के पावन जल से इच्छाओं की अग्नि को बुझाया जा सकता है ।

–स्वामी चिदानन्द की शिक्षाओं से

विषय सूची

क्रं.	शीर्षक	पृष्ठ न.
प्रथम खण्ड – भक्ति योग		
1.	भक्ति एक जीवन शैली	1
2.	ईश्वर	1
3.	उपासना – साकार एवं निराकार	4
4.	भक्ति	6
5.	भक्ति योग	16
द्वितीय खण्ड – कर्म और कर्मयोग		
6.	कर्म	17
7.	अध्यात्म	22
8.	कर्मयोग–मन का प्रबंधन	28
9.	कर्मों से बन्धन अथवा मोक्ष	31
तृतीय खण्ड – 2011 गुरु पूर्णिमा सत्संग		
10.	श्री स्वामी सत्यानंद और मुंगेर	33
11.	संन्यास पीठ	33
12.	अद्वैत दर्शन	35
13.	गुरु परम्परा	37
14.	ईश्वर और माया	38
15.	दत्तात्रेय	40
16.	आदिगुरु शंकराचार्य	42
17.	परमगुरु स्वामी शिवानन्द	43
18.	श्री स्वामी सत्यानन्द	47
19.	गुरुपूर्णिमा महोत्सव	48
20.	मेरा संक्षिप्त परिचय	52
21.	अब तक छप चुकी पुस्तकों का विवरण	53
22.	दानदाताओं की सूची	56

प्रथम खण्ड - भक्ति योग

भक्ति एक जीवन शैली

भक्ति येाग निश्चित रूप से भगवान, भक्त और भक्ति के विभिन्न साधनों का समन्वय है । शास्त्रों, ऋषि, मुनियों और सन्तों ने भक्ति को सर्वेच्च साधना कहा है । सामान्यत: भक्ति को एक विधि अथवा साधना समझा जाता है जिसके द्वारा ईश्वर का सान्निध्य एवं दर्शन प्राप्त किया जा सकता है । भक्ति एक जीवन शैली है; जीवन जीने की कला है । मनुष्य हमेशा तामसिक गुणों (काम, क्रोध, लोभ, घृणा, अंहकार, द्वेष) के प्रभाव में रहता है और सुख एवं दुख का अनुभव करता है । वह इसी अवस्था में, मनोदशा में सुख, शान्ति एवं प्रसन्नता की कामना करता है ।

कभी तामसिक, राजसिक अथवा सात्विक विचारों से प्रेरित हो कर वह ईश्वर की आराधना करता है । भगवान की आराधना ठीक है, वह मनुष्य का अधिकार है परन्तु वह भक्ति की व्याख्या नहीं है । भक्ति में भक्त इन तामसिक गुणों से मुक्त होकर सात्विक गुणों में स्थित होता है । वह सुख, शान्ति, प्रकाश और स्थिरता का अनुभव करते हुए आत्मा और परमात्मा के मिलन का रसास्वादन करता है । तामसिक गुणों से युक्त व्यक्ति माया के आधीन होता है, वह अपने अस्तित्व को भूल कर चिन्ता, परेशानी और तनाव के चँगुल में फंसा रहता है । एक भक्त चाहे कितनी भी परेशानी में क्यों न हो, सदैव सुख, शान्ति और प्रसन्नता का अनुभव करता है । व्यक्ति को चाहिए कि वह तामसिक अवस्था को पार करने के लिए अपने मन और भावनाओं को ईश्वर से जोड़े ।

ईश्वर

ईश्वर कौन है ? वेदों में कहा गया है कि शून्य में, अन्तरिक्ष के अन्धकार पूर्ण स्तब्ध वातावरण में एक चैतन्य ज्योति प्रकट हुई जिसे देवता कहा गया । देवता का प्रथम रूप है प्रकाश । जो इस अनुभव का साक्षी बना उसने इसे सदाशिव, पुरुषोत्तम या परमेश्वर आदि नाम दिए । अत: ईश्वर का मूल स्वरूप चैतन्य ज्योति है । वह निराकार है अर्थात् उसकी अपनी कोई आकृति अथवा आकार नहीं है । वह देवता मूल रूप में सत्य, शिव और सौन्दर्य की अनुभूति है, अत: उसे सत्यम् शिवम् सुन्दरम् कहा गया है ।

सत्य जगत के विस्तार का कारण है और विश्व का विस्तार चित् से होता है । इस विस्तार की उपलब्धि आनन्द है । अत: वह ईश्वर सत् चित् आनन्द रूप है । वही जगत का माता एवं पिता है । ईश्वर से ही इस सृष्टि की अभिव्यक्ति हुई है । पंच तत्त्व पृथ्वी, जल, वायु,

अग्नि और आकाश उस अदृश्य ज्योति के पाँच दृश्य शरीर हैं । माया ईश्वर की अन्तर्निहित शक्ति है ।

ईश्वर के रूप : शास्त्रों में कहा गया कि उस ईश्वर के तीन रूप हैं ।

1) स्थूल – जो व्यक्ति सृष्टि अथवा ब्रह्माण्ड हमें दिखाई देता है वह ईश्वर का विराट रूप है । गीता के ग्यारहवें अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को अपने विराट रूप के दर्शन करवाए जिसमें समस्त प्राणियों, जीवों, पर्वतों, सूर्य, चन्द्र आदि को अर्जुन ने देखा । यह ईश्वर का शरीरस्थ रूप है ।

2) सूक्ष्म रूप – अपने अन्त:करण में जो अनुभव प्राणी को मन, बुद्धि के द्वारा भावनाओं, वासनाओं, कामनाओं और अंहकार आदि के रूप में होते है; वह ईश्वर का सूक्ष्म रूप है । उनका नियंता हिरण्यगर्भ है ।

3) कारण रूप – ईश्वर इस जगत के हर प्राणी, हर कण में कारण (अर्थात् प्रतिभा अथवा बीज) रूप में विद्यमान है । एक बीज में अंकुरित होकर वृक्ष बनने की संभावना निहित होती है । वह संभावना कल भी थी, आज भी है और (भविष्य) कल भी रहेगी । तुम बीज को चाहे 2 माह, 4 माह अथवा एक वर्ष अपने पास रखो, जब भी उसको बोओगे; वह अंकुरित अवश्य होगा । क्योंकि उसमें विकास अर्थात् ईश्वरत्व छिपा है ।

वह ईश्वर तत्व अव्यक्त, अनादि और अनन्त है । उपासना के दृष्टिकोण से समझाने के लिए उसके तीन रूप बताए गए हैं । वे तीन रूप हैं – ब्रह्मा, विष्णु और महेश ।

ईश्वर के कर्म – ईश्वर के पाँच कर्म हैं –

१. सृष्टि की रचना – ब्रह्मरूप ईश्वर सृष्टि की रचना करते हैं ।

२. पालन – विष्णु रूप में ईश्वर सृष्टि के पालन का कार्य करते हैं ।

३. परिवर्तन – शिव रूप में ईश्वर परिवर्तन अर्थात् नई चीज़ों के विकास का कार्य करते हैं । नई वस्तुओं के विकास के फलस्वरूप पुरानी वस्तुओं का नाश स्वयमेव ही हो जाता है ।

4. तिरोधान – ईश्वर की अन्तर्निहित शक्ति माया ज्ञान को अविद्या के आवरण से ढक देती है । व्यक्ति अपने विवेक, बुद्धि और ज्ञान को भूल जाता है । स्वयं को भूल जाता है और मन की तामसिक अवस्था में वह जीवन व्यतीत करता है । उसकी बुद्धि भ्रमित हो जाती है और वह विषय भोगों में सुख और आनन्द खोजता है ।

5. अनुग्रह – अर्थात् कृपा । ईश्वर कृपा के कारण व्यक्ति को भक्ति प्राप्त होती है और

उसकी मानसिकता में एक सकारात्मक परिवर्तन आता है । भक्ति के माध्यम से व्यक्ति का उस अव्यक्त परमात्मा से सम्बन्ध जुड़ता है ।

ईश्वर के गुण – उस अव्यक्त परमेश्वर के 6 गुण हैं ।–

1. ज्ञान – वह परमात्मा सबको देखता है । ज्ञान के कारण वह प्रकृति के खेलों को साक्षी (द्रष्टा) भाव से देखता है ।
2. ऐश्वर्य – वह परमात्मा समस्त ऐश्वर्य का स्रोत है । समस्त ब्राह्माण्ड में जो भी अनुभूतियाँ होती हैं, वे उसके ऐश्वर्य का परिणाम हैं ।
3. वैराग्य – वह परमात्मा किसी से आसक्त नहीं है । वह सबको समान रूप से चाहता है । उदाहरणतया सूर्य का प्रकाश बिना किसी भेदभाव के सबको समान रूप से प्राप्त होता है । यदि आपके ६ बच्चे हैं और आप उनको समान रूप से देखते हैं, किसी के साथ राग (विशेष स्नेह) नहीं रखते हैं और आपका सम दृष्टिकोण है; तो आप में वैराग्य है ।
4. सामर्थ्य (बल) – वह परमात्मा सब कुछ करने में सक्षम है । सब कार्य उस की प्रेरणा से ही होते हैं ।
5. धन और सम्पत्ति – वह परमात्मा सब सम्पत्ति और समृद्धि का स्वामी है । उसके आने से समस्त अभाव दूर हो जाते हैं ।
6. कीर्ति – उस ईश्वर की कीर्ति सुन कर रोम–रोम में आनन्द की लहर दौड़ जाती है ।

ईश्वर कहाँ रहता है ? वह ईश्वर मन, प्राण, इन्द्रियों और शरीर, चार चीजों का स्वामी है । यह उसका निराकार रूप है । शास्त्रों में कहा गया है कि वह ईश्वर ज्योति रूप में सब प्राणियों के हृदय में निवास करता है । वह तुम में है और तुम उसमें हो क्योंकि आदि पिता वही है । पिता और पुत्र के अनुवांशिक गुण (जीन्स) मिलते–जुलते हैं । अब यह प्रश्न दिमाग में उठता है कि फिर मनुष्यों में भेद क्यों है ? तिरोभाव अर्थात् माया के आवरण के कारण ही मनुष्यों में भेद प्रकट होता है । किसी व्यक्ति के ऊपर यदि माया का अवरण रजाई की भाँति मोटा है तो उसे प्रकाश कैसे दिखेगा ? किसी व्यक्ति के ऊपर यदि माया का आवरण प्लास्टिक जैसा पारदर्शी है तो प्रकाश अवश्य दिखेगा । यदि यह माया का आवरण हटा दो तो ये भेद–भाव सब समाप्त हो जाएँगे । सम्पूर्ण जगत उसी परमेश्वर में समाहित है और उसी परमतत्व का निराकार रूप है। 'ईशावास्य उपनिषद' में कहा गया है कि यह संपूर्ण जगत ईश्वर का आवास है । ईश्वर का अस्तित्व अपने अन्दर या अपने चारो ओर देखो । यह विस्तार उसी ईश्वर का आभास है ।

उपासना – साकार एवं निराकार

निराकार और साकार की उपयोगिता : प्राणी का जन्म इस संसार में जब होता है तो उसकी बुद्धि माया द्वारा भ्रमित रहती है । समाज और माता – पिता के संस्कार भ्रमित हैं। वही भ्रमित संस्कार उस व्यक्ति को प्राप्त होते हैं । मनीषियों ने कहा है कि बुद्धि द्वारा निर्मित संस्कार इच्छा, वासना और आकांक्षा से प्रेरित होते हैं । गीता में कहा गया है – भक्त चार प्रकार के होते हैं । आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी ।

ईश्वर के निराकार रूप को केवल ज्ञानी ही जान सकते हैं । जिज्ञासु भक्त ईश्वर के निराकार रूप को समझने का प्रयास करता है और अपने अनुभव द्वारा उसको जान पाता है । संसार में अधिकांश भक्त आर्त और अर्थार्थी हैं । जीवन के दुखों, क्लेशों और अभावों को दूर करने के लिए व्यक्ति ईश्वर से प्रार्थना करता है । ऐसे भक्त भगवान के साकार रूप पर ही अपना मन टिका सकते हैं । एक बार सम्राट अकबर ने दरबार में कुछ प्रश्न किए । वे प्रश्न हैं -

प्र 1. भगवान कहाँ रहता है ?

उ. बीरबल का उत्तर – भगवान सर्वव्यापी हैं । उसका अपना स्थान नहीं है । भगवान के भक्त उसका दर्शन अपने हृदय में करते हैं । अत: वह ईश्वर सभी भक्तों के दिल में वास करता है ।

प्र. 2. भगवान क्या करता है ?

उ. बीरबल ने कहा, ''महाराज इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मुझे आसन चाहिए और आप प्रश्न पूछ रहे हैं इसलिए आप नीचे बैठ कर उत्तर सुनिए । अकबर ने बीरबल को अपने सिंहासन पर बैठा दिया और खुद नीचे बैठ गया । बीरबल ने कहा ''महाराज भगवान जो ऊँचा रहता है उसे नीचे लाते हैं और जो नीचा रहता है उसे ऊपर करते हैं । सतत परिवर्तन ही ईश्वर का काम है । वह कभी भी किसी चीज़ को स्थाई नहीं रहने देता है ।

प्र. 3. भगवान भोजन क्या करता है ?

उ. जो फल, फूल, लड्डू, मेवा हम भगवान को चढ़ाते हैं, वह उनका एक कण भी नहीं खाता है । भगवान मनुष्य के अंहकार का भक्षण करता है । जब तक मनुष्य के पास अंहकार है, वह ईश्वर के पास नहीं जाता है । जिस दिन वह अंहकार से मुक्त होता है, उसे ईश्वर की अनुभूति होती है ।

प्र. 4. तुम्हारे धर्म में कहते हैं कि ईश्वर अवतार लेता है । हमारे ग्रन्थों में कहा गया है कि ईश्वर सर्वसमर्थ है, वह कुछ भी कर सकता है । उदाहरणतया ईश्वर ने पैगम्बर को धरती पर अपना दूत बना कर भेजा ।

उ. यह प्रश्न तगड़ा है । गीता में कहा गया है, भगवान धर्म की स्थापना एवं दुष्टों का नाश करने के लिए तथा अपने भक्तों को आनन्दित करने के लिए आते हैं । बीरबल ने कहा, ''महाराज इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए मुझे थोड़ा समय दीजिए ।'' बीरबल महल में वहाँ गए जहाँ अकबर का बेटा अपनी दाई के साथ खेल रहा था । उसने दाई से कहा, '' शाम को जब सम्राट अकबर उद्यान में सैर के लिए जाएँगे तो तुम एक लकड़ी का गुड्डा तालाब के पानी में फेंक देना और झूठमूट चिल्लाना, ''महाराज का बेटा पानी में गिर पड़ा, बचाओ–बचाओ ।'' शाम को दाई ने ऐसा ही किया । जैसे ही अकबर के कानों में यह आवाज़ पड़ी उसने आव देखा न ताव और वह दौड़ कर तालाब में कूद गया और गुड्डे को बाहर निकाल कर ले आया । बीरबल ने कहा, यहाँ इतने सैनिक और सभासद हैं, आप स्वयं क्यों दौड़े और तालाब में कूदे ? आप किसी को भी कह देते, वह बच्चे को निकाल लाता । अकबर ने कहा, ''मैं सैनिकों को क्यों बुलाऊँ ? मेरा बेटा है । मेरे अन्दर अपनत्व की भावना ने मुझे दौड़ने और कूदने के लिए प्रेरित किया । बीरबल ने कहा, ''महाराज अपने प्रश्न का उत्तर आपने स्वयं दे दिया । हम सब उस ईश्वर के बच्चे हैं । वह ईश्वर भी अपनत्व की भावना के कारण ही मनुष्य शरीर धारण करते हैं; अवतार लेते हैं और अपने बच्चों को डूबने अथवा मरने से बचाते हैं ।

प्र. 5 भगवान जो अनादि, अव्यक्त और अनन्त हैं, तुम लोग उसे साकार रूप में कैसे बाँध देते हो?

उ. ''महाराज, यह प्रश्न समझाना थोड़ा कठिन है । आपके दरबार में जो आपके पिता जी का तैल चित्र लगा है, यदि उस पर कोई थूक दे, तो आपको कैसा लगेगा ?'' अकबर ने कहा, ''हम तुरन्त उसका गला कटवा देंगे''। बीरबल ने कहा, अपने पिता के निर्जीव तैल चित्र को देखकर जो भावना आपके मन में है, वह प्रकट होती है और आपको उनसे जोड़ती है । इसी प्रकार एक भक्त भी मूर्ति में अपने ईश्वर को देखता है। भक्त के अन्दर श्रद्धा, विश्वास, प्रेम, सम्मान और आत्मीयता की भावना जाग्रत होती है जो उसे ईश्वर से जोड़ती है । मूर्ति पूजा से ईश्वर प्रसन्न होते हैं । मूर्ति केवल एक प्रतीक है और यह भारतीय दर्शन का मूल आधार है । अनेक विदेशियों ने भारतवर्ष पर आक्रमण किए और मूर्ति पूजा का खंडन किया । परन्तु भारतीयों ने साकार उपासना की विधि को दृढ़ता से पकड़े रखा ।

साकार उपासना का महत्व – आध्यात्मिक जीवन के उत्थान के लिए साकार उपासना आवश्यक है । उसी से हमारे जीवन में श्रद्धा, विश्वास और भक्ति का उदय होता है । जो व्यक्ति सोचता है मात्र चिन्तन से भक्ति प्राप्त हो जाएगी वह गलत सोचता है । साकार उपासना के द्वारा भक्त अपने आराध्य को आधार बनाता है और अपने मन को उस आधार में लीन करता है । जब तक मन को एक बिंदु में टिकाने के लिए आधार नहीं मिलता वह स्थिर नहीं होता है । तुम लोग मन को स्थिर करने के लिए इसे श्वास, शरीर, प्रतीक आदि पर ध्यान लगाते हो । साकार उपासना में वह आधार है साकार । एक भक्त उस प्रतीक में अपने आराध्य को जीवंत रूप में देखता है और उसके अन्तःकरण में प्रेम, सम्मान, श्रद्धा, विश्वास और समर्पण आदि भावनाओं का प्रादुर्भाव होता है ।

भक्ति

भक्ति किसको कहते है ? प्रत्येक जीव की स्वाभाविक प्रवृत्ति है सुख की खोज । अपने सामाजिक, पारिवारिक जीवन में व्यक्ति अपने अन्दर अथवा बाहर सुख की खोज निरन्तर करता है । आप नौकरी और व्यवसाय के द्वारा सुख प्राप्ति के लिए धन कमाते हो । जीवन का वास्तविक स्वरूप सुख और आनन्द है । तीन प्रश्न जीव के मन में उठते हैं, वे प्रश्न हैं –

1. आनन्द का केन्द्र बिन्दु क्या है और वहाँ कैसे पहुँचे ?
2. सुख प्राप्ति के लिए कौन सा मार्ग अथवा साधन है ?
3. हमारी इस प्रक्रिया में गुरु अथवा शास्त्रों का क्या महत्व है ?

शास्त्रों में कहा गया है, सुख सनातन है । पूर्णता में सुख है । अपूर्ण और अल्प में सुख नहीं है । दुःख क्षणिक है । संसार के लोग मानते हैं कि दुःख सनातन है, अधिक है और सुख क्षणिक है । जीवन में जब एक दरवाज़ा बन्द हो जाता है तो हम दुःखी हो जाते हैं क्योंकि हम उसी पर अपनी दृष्टि केन्द्रित रखते हैं । अगर हम मुड़ कर देखते हैं तो दूसरा दरवाजा ईश्वर खोल देता है । हमारी संकीर्णता ही हमारे दुःखों का कारण है । यदि हम स्वयं को सुख से जोड़े रहते हैं तो सुख अधिक हो जाता है और यदि हम दुःख से स्वयं को जोड़ते रहते हैं तो दुख

अधिक हो जाता है । पानी के एक आधे गिलास को देखकर यदि आप गिलास का खालीपन देखते हैं तो आप अपने जीवन में अभावों को ही देखते रहते हैं और स्वयं को कोसते रहते हैं । जो व्यक्ति पानी को देखता है और उस पानी से अपनी प्यास बुझाने की बात सोचता है वह जीवन में उपलब्धि को देखता है । यही भक्ति है । एक भक्त संसार के वैभवों का तिरस्कार करता है और शाश्वत सुख की खोज करते हुए ; दु:ख को क्षणिक मानते हुए ; ईश्वर के प्रकाश में निरन्तर रहने का प्रयास करता है । यह भक्ति की सरल व्याख्या है ।

भक्ति का सिद्धान्त – जिज्ञासु और ज्ञानी भक्त ईश्वर की सर्वव्यापकता का अनुभव करते हैं । इस अनुभव के आधार पर वे ईश्वर से एक सम्बन्ध स्थापित करते हैं । आर्त ओर अर्थार्थी भक्त सदैव सांसारिक विषय भोगों में सुख की खोज करता है। इसीलिए वह अधिक से अधिक उनका संग्रह करता है । मनीषी कहते हैं कि सांसारिक विषय भोगों से प्राप्त सुख क्षणिक है क्योंकि विषय भोगों के अभाव में वह सुख प्राप्त नहीं हो सकता है । शाश्वत सुख को संसार में रहते हुए प्राप्त करने के लिए, हमें सुख के केन्द्र ईश्वर की ओर जाना होगा । अर्थात् तुम्हें संसाराभिमुख की अपेक्षा ईश्वराभिमुख बनना होगा । वह परमात्मा सुख का सागर है । उसको प्राप्त करने के पश्चात् जीवन के समस्त क्लेश समाप्त हो जाते हैं ।

भक्ति और मनोविज्ञान – भक्ति मन और चेतना की एक अवस्था है जिसमें मनुष्य स्वयं को ईश्वर से जोड़ना चाहता है और अच्छाई को अपनाना चाहता है । विषय और भोग की आकांक्षा मन की एक अवस्था अर्थात् वृत्ति है । यदि व्यक्ति जीवन में अच्छाई को अपनाना चाहता है तो उसे मन की तामसिक वृत्तियों (काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद आदि) से संघर्ष करना पड़ता है और सात्विक वृत्ति को अपनाना पड़ता है ।

योग में पाँच वृत्तियों (प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति) का वर्णन किया गया है । ये वृत्तियाँ तमस, रजस और सत्व से प्रभावित हो कर अन्य अनेक वृत्तियों को जन्म देती हैं । ये वृत्तियाँ सुख और दु:ख के रूप में जीवन में प्रकट होती हैं । इन वृत्तियों को पार करने के पश्चात् मन में भक्ति वृत्ति का जन्म होता है, जिसे ब्राह्मी वृत्ति भी कहा गया है ।

भक्ति शास्त्र के अनुसार मन की वृत्ति को तीन भागों में विभाजित किया गया है ।

1. ज्ञान वृत्ति
2. भावना वृत्ति
3. कर्म वृत्ति ।

जीवन में एक वृत्ति की प्रधानता रहती है; परन्तु अन्य दो वृत्तियों का सहयोग रहता है । उदाहरणतया आप सब भक्ति विषय पर सत्संग सुन रहे हैं । इस समय आप में ज्ञान वृत्ति प्रधान है । जैसे – जैसे सुनते हैं उसके साथ भावना वृत्ति का सहयोग होता है । मैं जैसे – जैसे बताता हूँ, वैसे – वैसे करते हैं तब कर्म वृत्ति का सहयोग होता है ।

भाव वृत्ति सर्वाधिक महत्वपूर्ण है – भक्ति शास्त्र में भाव वृत्ति का बहुत अधिक महत्व है । रामायण में कहा गया है, ''जाकि रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी ।'' अर्थात् आप की जैसी भावना होगी, वैसे ही प्रभु के दर्शन होंगे । भाव वृत्ति की शारीरिक अभिव्यक्ति शरीर में कंपन एवं रोमांच के रूप में, हृदय में द्रवित होकर आँसू निकलने के रूप में होती है । कंपन, रोमांच, आँसू निकलना कर्म वृत्ति के रूप हैं । भाव वृत्ति का एक रूप रसात्मक है । इसमें रस का अनुभव होता है । व्यक्ति श्रद्धा और प्रेम का विकास करता है । यदि रस नहीं है तो संवेदनशीलता का विकास नहीं होता । भाव वृत्ति का तीसरा रूप आवेशात्मक है । व्यक्ति कभी भय, क्रोध, अन्तर्मुखता, अवसाद अथवा बहिर्मुखता अनुभव करता है । कभी –कभी मनुष्य पागलों की तरह व्यवहार करता है । संयम आवश्यक है । भक्ति का उद्देश्य है आनन्द की खोज ।

दर्शन, श्रवण और मनन – चित्त यदि एक अच्छा दृश्य देखता है तो उससे तदाकार हो जाता है। यदि एक बुरा चित्र देखता है तो उससे प्रभावित होता है । यदि मैं कहता हूँ, 'आप बहुत अच्छे हैं तो आप बहुत प्रसन्न हो जाते हैं । और यदि कहता हूँ, ' आप बुरे हैं, तो आप दु:खी हो जाते हैं ।' केवल श्रवण मात्र से आपके अन्दर प्रतिक्रिया होती है । भक्ति को साधने के लिए दर्शन, श्रवण और मनन ठीक रहना चाहिए । इन तीनों को आधार बना कर मन की तामसिक बहिर्मुखी वृत्ति शान्त की जा सकती है । दर्शन के लिए आराध्य का रूप, श्रवण के लिए मंत्र (ज्ञान रूप में) एवं मनन चिंतन के लिए अनुभव आवश्यक है । धरती, आकाश, जल आदि में अपने आराध्य का रूप देखने का प्रयास करो । यदि हम जो सुनते हैं उससे हमें आनन्द, सुख प्राप्त होता है तो मानसिक एकाग्रता की प्राप्ति होती है । निन्दा, चुगली एवं व्यर्थ की गपशप से विवेक बाधित होता है, मन की संवेदनशीलता कम हो जाती है । ईर्ष्या, राग, द्वेष, घृणा, वासना, कामना आदि में मन की शक्ति कम हो जाती है । जब भगवान के दर्शन, श्रवण और मनन से चित्त की वृत्ति ईश्वर की ओर प्रवाहित होती है तो भक्ति की भावना प्रकट होती है ।

भक्ति की व्याख्या – भक्ति शास्त्र पर देवर्षि नारद और महर्षि शांडिल्य ने दो ग्रन्थ लिखे हैं । देवर्षि नारद ने भक्ति को भाव प्रधान कहा है और इसे ईश्वर के प्रति परम प्रेम ही बताया है । एक भक्त ईश्वर से अपने जीवन के दु:खों और क्लेशों को दूर करने की प्रार्थना करता है । जब जीवन में सुख आता है तुम आसक्त हो जाते हो, अन्तर में राग उत्पन्न होता है । दु:ख आने पर तुम विरक्त हो जाते हो और अन्तर में द्वेष उत्पन्न होता है । यह सुख और दु:ख ही माया का बंधन है । जो व्यक्ति माया के बंधनों से इन्द्रियों को मुक्त करके ईश्वर की आराधना करता है वह भक्ति प्राप्त करता है । ऐसा भक्त साकार उपासना करता है ।

महर्षि शांडिल्य भक्ति सूत्र ज्ञान प्रधान है । मनुष्य अपने लिए कुछ याचना नहीं करता है । वह केवल ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त करने के लिए निराकार उपासना करता है । दोनों की व्याख्या में भक्ति को ईश्वर के प्रति प्रेम और अनुराग बताया है ।

भक्ति का मूल अर्थ – भक्ति शब्द की उत्पत्ति भज्सेवायाम धातु से हुई है । भज सेवायाम् का अर्थ है सेवा और प्रेम । सेवा का अर्थ है दूसरों के सुख एवं उत्थान के लिए कार्य करना । जो हम अपने लिए करते हैं, चाहते हैं वह कर्म है । जब तुम संसार में सभी से प्रेम करने लगते हो तब वह भक्ति है । भक्ति का प्रथम चरण है सेवा और द्वितीय चरण है प्रेम । सेवा में हमारी भावना दूसरों की ओर बहती है । तुम लोग मतलब के लिए प्रेम करते हो । तुम्हारा प्रेम–धन, संपत्ति अथवा सम्बन्धों से जुड़ा हुआ है । एक भक्त का प्रेम शुद्ध एवं निष्कपट होता है । परमगुरु स्वामी शिवानन्द ने भक्ति की व्याख्या सेवा और प्रेम के रूप में की है । यदि तुम सेवा करते हो पर प्रेम नहीं, हैं, यदि तुम प्रेम करते हो पर सेवा नहीं करते, अपने कर्तव्यों की अवहेलना करते हो तो वह भक्ति नहीं है। हमारे गुरु स्वामी सत्यानन्द ने भावनाओं के दिशान्तरण को ही भक्ति कहा है । जिस प्रकार समस्त नदियाँ समुद्र में विलीन हो जाती हैं, उसी प्रकार जब मन की बहिर्मुखी वृत्तियाँ अन्दर की ओर प्रवाहित होती हैं तो मनुष्य का अपना अस्तित्व समाप्त हो जाता है और वह भक्तिमय, परमात्ममय हो जाता है । स्वामी सत्यानन्द ने कहा – पांतजलि योग के आठ चरण (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि) केवल अपने कल्याण के लिए, अपनी शुद्धि के लिए किए जाते हैं । समाधि में जो अनुभव तुम्हें प्राप्त होते हैं वह तुम्हें प्रफुल्लित, आनंदित करते हैं । पंतजलि का योग जहाँ समाप्त होता है, वहाँ से परमगुरु स्वामी शिवानन्द का योग प्रारम्भ होता है। शिवानन्द योग के प्रथम चार चरण हैं : 1) सेवा 2) प्रेम 3) दान 4) शुद्धि । उनके योग की शुरुआत ही भक्ति

(सेवा+प्रेम) से होती है । जब सेवा ओर प्रेम प्रबल हो जाते हैं तो भक्त ईश्वर की विभूति को अपने अन्दर धारण करता है ।

शुद्ध प्रेम और भक्ति – सूफी साहित्य में दो प्रकार के प्रेम का जिक्र आता है । प्रथम है इश्क मिजाजी; वह प्रेम जो दिमाग से अपने स्वार्थ के लिए एवं महत्वाकांक्षाओं से प्रेरित हो कर किया जाता है । परिवार में पति–पत्नी, सन्तान इत्यादि का प्रेम साधारणतया इच्छा, अपेक्षा पर आधारित होता है । दूसरा प्रेम है इश्क हकीकी; यह प्रेम शुद्ध हृदय में उत्पन्न होता है और इसमें कोई कामना, वासना, इच्छा आदि नहीं होती । एक भक्त का अपने आराध्य के प्रति शुद्ध प्रेम होता है । परमगुरु स्वामी शिवानन्द ने प्रेम की अभिव्यक्ति के चार प्रकार बताए हैं – 1) संवेदनशील भावना २) स्नेह (Warm affection) 3) प्रगाढ़ 4) अग्नि की ज्वाला के समान । प्रेम संसार के सब द्वेष भस्म कर देता है । प्रेम अंधकार में ज्योति के समान है जो भक्त को उसके आराध्य से जोड़ती है । प्रेम साहित्य, संगीत और दार्शनिकों की माँ है । प्रेम एक ऐसी ऊर्जा और शक्ति है जिसको प्राप्त करके मनुष्य पूर्णता का अनुभव करता है । प्रेम के अभाव में मनुष्य पशु के समान है ।

भक्ति मार्ग कठोर है; परन्तु जब भाव द्रवित हो जाता है तो भक्त का हृदय लाख की भाँति पिघल जाता है और उस भक्ति का शुद्ध निर्मल स्वरूप झलकता है ।

भक्ति को प्राप्त करने के साधन – आराधना, उपासना, अनुष्ठान, पूजा आदि भक्ति को प्राप्त करने के साधनों में से कुछ हैं । नाम स्मरण एक ऐसी विधि है जिसे यदि चिन्तामुक्त हो कर किया जाता है तो मन सहज ही ईश्वर की ओर मुड़ जाता है । संसार में शादी न हो तो चिन्ता करते हो, शादी हो जाती है तो चिन्ता करते हो । यह एक उदाहरण है । चिन्ता से मन कभी भी मुक्त नहीं हो पाता । ईश्वर नाम स्मरण तुम्हारे विचारों की दिशा बदल कर अपनी ओर खींच लेगा । कीर्तन : प्रभु नाम के गायन को कीर्तन कहा गया है । मन इसमें सहज ही रम जाता है । श्रवण, कीर्तन, पादसेवनं, अर्चनम्, दास्यं, साख्यं, आत्मनिवेदनं इत्यादि भक्ति को प्राप्त करने के साधन हैं जिनका वर्णन शास्त्रों में मिलता है । ये उपाय मन को ईश्वर की ओर मोड़ते हैं । श्री मद् देवी भागवत् में मोक्ष प्राप्ति के तीन उपाय बताए गए हैं – 1. ज्ञान योग 2. कर्म योग 3. भक्ति योग । इन तीनों साधनों में भक्ति योग सर्वाधिक सरल है । देवी माँ ने कहा – योग, कर्म, तपस्या, ज्ञान और तीर्थयात्रा के द्वारा जो व्यक्ति प्राप्त करता है, मेरा भक्त भक्तियोग के द्वारा सहज ही प्राप्त कर लेता है ।

भक्ति के दो भाग – 1. पराभक्ति 2. अपरा भक्ति

1. पराभक्ति को दैविक भक्ति भी कहा गया है । ऐसा भक्त इस नश्वर शरीर में अनश्वर आत्मा को जानने का प्रयत्न करता है । इस भक्ति में कोई कर्मकांड की आवश्यकता नहीं है । भक्त की कोई कामना अथवा वासना नहीं होती । परमगुरु स्वामी शिवानन्द कहते थे, ''मैंने औपचारिक रूप से कभी भी प्रार्थना नहीं की । प्रतिदिन जब मैं माताओं से मिलता हूँ तो मानसिक रूप से 'ऊँ दुर्गाय: नम:' बोलता हूँ । आप यह नहीं कर सकते । उनके जीवन में कोई कामना अथवा समस्या नहीं थी । विषय उन्हें स्पर्श नहीं कर सकते थे । ज्ञानी भक्त परा भक्ति सिद्ध करते हैं । कुछ जिज्ञासु साधक जिनमें कोई कामना नहीं है, वे इस भक्ति को चुनते हैं और आत्मान्वेषण करते हैं ।

2. अपरा भक्ति : इस भक्ति को भौतिक भक्ति भी कहा गया है । आर्त और अर्थार्थी भक्त इसी भक्ति को सिद्ध कर सकते हैं । जो व्यक्ति विषयों एवं परिस्थितियों से प्रभावित होता है, उसे कर्म की आवश्यकता है । कर्मकांड, अनुष्ठान में नियम का पालन आवश्यक है । अपरा भक्ति हमारे लिए प्रवेशिका है । हम जब यात्रा करते थे तो कई लोगों के घरों में रहने का सुअवसर प्राप्त हुआ । समय के अभाव में कई लोग सुबह नहाकर बदन पोंछते –पोंछते ही हनुमान चालीसा का पाठ करते थे । एक हाथ से अगरबत्ती घुमाते रहते थे । जब इस प्रकार की भावना होगी तो भक्ति कैसे सिद्ध होगी । किन्तु यह मार्ग गलत नहीं है । चीनी का अगर एक चम्मच नहीं तो कुछ दाने तो हैं ही । अगर जीवन में संयम होता है तो अपरा भक्ति परा भक्ति में परिवर्तित हो जाती है । अधिकांश व्यक्ति केवल दु:ख में ही ईश्वर का नाम लेते हैं । जब सुख आता है तो भगवान को याद करना बन्द कर देते हैं । महाभारत में श्री कृष्ण की बुआ कुन्ती ने उनसे दु:ख माँगे थे क्योंकि दु:ख में वे हमेशा उनके साथ रहते थे । कई लोग ईर्ष्या और द्वेष की भावना से प्रेरित होकर भक्ति करते हैं और दूसरों को दु:ख देने के लिए वर माँगते हैं। ऐसी भक्ति का क्या लाभ जो मन का तमोगुण भी दूर न कर सके ।

भक्ति मार्ग की बाधाएँ – भक्ति को प्राप्त करने के लिए जीवन की अवस्थाएँ बदलना जरूरी हैं । भक्ति शास्त्र में 5 बाधाओं का वर्णन है –

1. अभिमान

अ जाति का अभिमान –मैं क्षत्रिय हूँ । मैं ब्राह्मण हूँ । व्यक्ति स्वयं को मनुष्य रूप में न देखकर ब्राह्मण अथवा अपनी जाति के रूप में देखता है । मैं बड़ा, छोटा, पावन, पतित

आदि भावों से अंहकार बढ़ता है और भावना ईश्वर में केन्द्रित नहीं हो पाती ।

ब विद्या अभिमान – मैं इतना पढ़ा लिखा हूँ । मैंने इतनी किताबें लिखी हैं ।

स पद अभिमान – ऊँचे पद वाले व्यक्ति को यह अभिमान रहता है । यदि कोई निर्धन अमीर बन जाता है तो वह सिर झुकाना भूल जाता है । हृदय की कोमलता समाप्त हो जाती है ।

द सौंदर्य का अभिमान

ह जवानी का अभिमान

2. काम वासना – तुलसीदास की कहानी आप सब जानते हैं । वे अपनी पत्नी को अनन्य प्रेम करते थे । एक बार जब वह मायके चली गई तो वे अंधेरे में एक लाश को लकड़ी समझ कर नदी पार कर गए और एक सर्प को रस्सी समझ कर पत्नी के पास (जो पहली मंजिल पर थी) पहुँच गए । उनकी पत्नी ने कहा, ''इस नश्वर देह में इतना प्रेम ! यदि इस प्रेम का दसवाँ भाग भी ईश्वर में होता तो तुम्हारा कल्याण हो जाता !'' तुलसीदास घर छोड़ कर निकल गए । ब्रह्मचर्य के द्वारा काम रूपी शत्रु पर विजय प्राप्त करो । गृहस्थ के लिए संभोग आवश्यक है । ब्रह्मचर्य का अर्थ यहाँ संयम से है । यह मन की एक शान्त स्थिति है जिसके द्वारा कामनाओं और अपेक्षाओं को क्षीण किया जाता है ।

3. क्रोध – क्रोध के आने से भक्ति सिद्ध नहीं होती । क्षमा के द्वारा क्रोध पर विजय प्राप्त करो ।

4. भ्रम – मैं क्या करुँ, क्या न करुँ, किससे पूछूँ ? ये सब भ्रम के लक्षण हैं । चिन्तन, सजगता, अनुभव, ज्ञान और बुद्धि के द्वारा भ्रम पर विजय प्राप्त करो ।

5. भौतिक प्रेम – परिवार में रहते हुए पति अथवा पत्नी, बच्चों को प्रेम करते हुए, अपने प्रेम को व्यापक बनाओ । दादी माँ प्रेम वश माला से जप करते हुए भी बहू को कभी बच्चों को दूध देने के लिए, कभी खाना बनाने के लिए आदि निर्देश देती रहती हैं । भौतिक प्रेम को दैविक प्रेम में परिवर्तित करो ।

भक्ति प्राप्त करने के लिए भाव – अपने आराध्य से एक सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है।

1. दास्य भाव – परमगुरु स्वामी शिवानन्द कहते थे, 'मैंने बहुत सम्बन्धों को आजमाया परन्तु मुझे भगवान का सेवक बन कर जो आनन्द प्राप्त हुआ वह किसी और भाव से नहीं प्राप्त हुआ ।

2. शान्त भाव – मन को शान्त करना अत्यावश्यक है । सांसारिक विषयों से मन हटा कर ईश्वर पर केन्द्रित करो ।

वेदान्तिक क्रम – १. साख्य भाव – ईश्वर को अपना सखा मानना । सुदामा और कृष्ण, सुग्रीव और राम का मित्रता का सम्बन्ध था । वात्सल्य भाव – एक माँ का जो प्रेम अपनी सन्तान के प्रति होता है । ऐसा प्रेम व्यक्ति से बलिदान करवाता है ।

3. माधुर्य भाव –अधर मधुरं ... किसी में कोई दोष दिखाई नहीं देता । ऐसे भक्त को संपूर्णता का अनुभव होता है। ज्ञानी और जिज्ञासु भक्त के लिए यहभावआवश्यक है ।

भक्ति के प्रकार – विभिन्न ग्रंथों एवं संतो ने भक्ति को प्राप्त करने के लिए अलग–अलग सूत्र दिए हैं । मार्ग चाहे अलग हो, नाम चाहे अलग हो, परन्तु इन सब सूत्रों का उद्देश्य एक ही है और वह उद्देश्य है जीवन में सुख शान्ति और प्रसन्नता की स्थायी प्राप्ति ।

1 भागवत – श्री मद् भागवत में भक्ति की बहुत ही सुन्दर व्याख्या दी गई है । दर्शन, श्रवण और चिन्तन से मन ईश्वर से एकाकार हो जाता है । उदाहरणतया जल को जिस पात्र में डाला जाता है वह उसी पात्र का आकार ग्रहण कर लेता है । नवधा भक्ति को 3 भागों में विभाजित किया गया है –

अ श्रवण, कीर्तन और स्मरण – ईश्वर के नाम, मंत्र, कथा का श्रवण, गायन अथवा स्मरण करने से मन ईश्वर में लगने लगता है । जैसे यदि आपका बच्चा बाहर पढ़ने या नौकरी करने जाता है तो उसकी स्मृति आपके मन के एक कोने में बनी रहती है । आप संसार के काम करते जाइए; परन्तु मन में ईश्वर का स्मरण इसी प्रकार रखिए । रसोई घर में खाना पकाते हुए माँ का ध्यान बच्चे में रहता हैं । स्वामी सत्यानन्द कहते थे, 'मैं अपने गुरु स्वामी शिवानन्द को याद नही करता रहता; परन्तु मुझे सतत उनकी उपस्थिति का अहसास रहता है । मैं हर रूप में उनको देखता हूँ । यह एक शिष्य के जीवन में श्रद्धा की पूर्ण अभिव्यक्ति है ।

ब. पादसेवनं, अर्चनं, वन्दनं – पादसेवनं का अर्थ है ईश्वर अथवा गुरु की शिक्षाओं को पूर्णरूपेण अपनाने का प्रयास करना । अर्चनम् का अर्थ है ईश्वर प्राप्ति के लिए कर्म करते जाना । वंदनम् का अर्थ है ईश्वर के समक्ष अपने अंहकार को झुकाना ।

स. दास्यं, साख्यं, आत्मनिवेदनं – दास्य भक्ति में मनुष्य की श्रद्धा और विश्वास का विकास तेजी से होता है; क्योंकि वह स्वयं को ईश्वर का सेवक समझता है । साख्य

भाव है मैत्री का भाव । सखा सम्बंध ईश्वर से प्रागढ़ता होती है । उदाहरणतया एक मित्र दूसरे मित्र के विचारों, सुझावों को सहज की आत्मसात कर लेता है आत्मनिवेदन में भक्त ईश्वर को पूर्णरूपेण स्वयं का समर्पण करता है ।

2. रामचरितमानस – रामायण में श्री राम ने माता शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश दिया है । यह व्यावहारिक है और प्रत्येक व्यक्ति इसे सरलता से अपने जीवन में कार्यान्वित कर सकता है ।

अ) संत का संग – संत वह है जिसका हृदय मक्खन के समान कोमल है । भावनाशून्य, असंवेदनशील व्यक्ति संत नहीं हो सकता ; उसका हृदय पत्थर की तरह कठोर होता है । ऐसा व्यक्ति दूसरों का बुरा सोचता है और उन्हें कटु शब्द कहता है । अच्छे व्यक्तियों का संग करो ताकि तुम्हारे विचार अच्छे बनें । तुम जीवन की संकीर्णता, स्वार्थ परायणता से ऊपर उठो । एक सूखी लकड़ी यदि चन्दन की लकड़ी के साथ रख दी जाती है तो वह कुछ समय के बाद चन्दन की तरह सुगन्धित हो जाती है ।

ब) कथा श्रवण करना – कथा को कहानी की तरह सुन कर छोड़ मत दो । हर कथा में न्याय, धर्म, नीति और संयम की शिक्षाएँ निहित होती हैं । उन शिक्षाओं को अपने जीवन में अपनाओ । कथा के प्रसंगो को हृदयांगम करो ।

स) गुरु पद पंकज सेवा – गुरु जी के बताए हुए मार्ग पर पूर्ण श्रद्धा और विश्वास के साथ चलो । उनकी शिक्षाओं को अपने जीवन में अपनाओ, व्यावहारित करो ।

ह) छल–कपट रहित होकर भगवान का नाम गाना – छल–कपट को छोड़कर ईश्वर के दिव्य नामों का सदैव श्रवण, कीर्तन, और स्मरण करते जाओ । ईश्वर सर्व व्यापी है । वह सब प्राणियों, पशुओं में विद्यमान है । फिर कैसा जाति पाति का भेद? कैसा नाम का भेद ?

त) मंत्र जप – योग दर्शन में मंत्र को एक ऐसी शक्ति कहा गया है जो मनुष्य के मन को कामनाओं एवं वासनाओं के बंधन से मुक्त करती है । आप कामना पूर्ति के लिए चिन्तन करते हो । वह चिन्तन, चिन्ता में बदल जाता है । चिन्ता मन को बाँध देती है ।

द) सज्जन व्यवहार – सामान्यत: जीवन में पशुता काम, क्रोध, मद, लोभ इत्यादि के रूप में प्रकट होती है । अपने जीवन के उत्थान के लिए अच्छे स्वभाव और चरित्र को अपनाना चाहिए ।

सबको एक समान देखना – सब एक समान हैं। सबमें उस ईश्वर का प्रकाश है। फिर भेद –भाव क्यों ? अंहकार नहीं करना चाहिए ।

ध) संतोष और परदोष दृष्टि का अभाव – जो ईश्वर कृपा से मिल जाय उसमें संतोष करना चाहिए । दूसरों के दोष सपने में भी नहीं देखने चाहिए ।

न) सरलता और मेरा भरोसा – सरलता और सबके साथ कपट रहित व्यवहार नवीं भक्ति है । किसी भी अवस्था में हर्ष और विषाद का न होना । जिस भक्त को मेरा भरोसाा हो, वह मुझे बहुत प्रिय है ।

3. गीता : श्री कृष्ण ने गीता में भक्ति की साधनात्मक विधि का वर्णन किया है ।

अ) मन को शान्त करके उसको श्वास के ऊपर एकाग्र करके ऊँ का ध्यान करो ।

ब) ध्यान सहित जप – नासिकाग्र दृष्टि (नासिका के अगले भाग पर) अथवा भ्रूमध्य दृष्टि (दोनों भौहों के बीच में) के द्वारा मन को एकाग्र करके श्वास के साथ मंत्रजप करो ।

स) ध्यान रहित जप – चलते–फिरते, खाते–पीते सहज भाव से प्रभु के किसी भी स्वरूप पर मन को टिका कर रखते हुए जप करते जाओ ।

गीता के १२वें अध्याय में जब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा, ' भगवान् आपको कौन से भक्त अधिक पसन्द हैं जो निराकार उपासना करते हैं, अथवा जो साकार उपासना करते हैं ? श्री कृष्ण ने कहा –मेरे लिए दोनों ही बराबर हैं । कोई भी मंत्र किसी भी विधि से यदि व्यक्ति करता है तो मुझे वह प्रिय है । मन्त्र वह खूँटा है जिस पर मन को बाँधा जा सकता है । मंत्र को मानसिक (मन में) उपांशु (होठों से बुदबुदाकर) अथवा बैखरी (बोल–बोल कर) किया जा सकता है ।१२ वें अध्याय में उन्होंने एक भक्त के लक्षण विस्तार से बताए हैं । उदाहरणतया ''अद्वेष्टा सर्व भूतानाम् मैत्र: करुण एवं च । निर्ममो निरहंकार: सम सुख दु:ख क्षमी । '' इसी प्रकार अपने प्रिय भक्तों का विविध प्रकार से वर्णन उन्होंने किया है ।

गीता में प्रत्याहार का उल्लेख भी किया गया है । मंत्र जप के द्वारा अपने मन और इन्द्रियों को आत्मा के कवच में सुरक्षित करो । जिस प्रकार एक कछुआ खतरे का आभास होने पर अपने अंगों को अपने कवच में समेट लेता है, इसी प्रकार तुम स्वयं को संसार में अन्तर्मुखी बना कर रखो ।

4. नित्य उपासना – अधिकांश लोग घर में एक छोटा सा मंदिर बना लेते हैं । वहाँ अपने आराध्य का एक चित्र लगा कर, उसके आगे दीपक एवं अगरबत्ती जलाते हैं । वहाँ पर

बैठ कर तुम्हें सुख मिलता है । यदि तुम दु:खी होते हो तो ईश्वर को कह देते हो । तब तुम्हें सांत्वना का अहसास होता है । यह भी एक नियम और अनुशासन है जिसके द्वारा भक्ति का विकास होता है ।

भक्ति योग

5. गुरु – अपने गुरु की शिक्षाओं को आत्मसात करो और उन्हें अपने व्यवहार में अपनाओ । परमगुरु स्वामी शिवानन्द के अष्टांग योग में निम्नलिखित आठ चरणों का प्रावधान है : सेवा, प्रेम, दान, शुद्धि, अच्छे बनो, अच्छा करो, करुणा करो, दया करो । स्वामी जी का योग भक्ति से ही आरम्भ होता है । भक्ति का अर्थ है सेवा और प्रेम । स्वामी जी कहते थे – सेवा, प्रेम और उदारता के द्वारा आन्तरिक शुद्धि होती है और व्यक्ति की भावना निर्मल हो जाती है । ऐसा व्यक्ति शीघ्र ही ईश्वर की अनुभूति कर पाता है । तुम १०० हाथों से लो और १००० हाथों से बाँटो । यही उदारता है ।

6. स्वामी सत्यानन्द – मैंने अनेक साधनाएँ की, अनेक प्रकार के योगों (हठयोग, राजयोग आदि) का अभ्यास किया पर भक्ति के मार्ग पर आकर ही मुझे पूर्णता का अनुभव हुआ । आत्मभाव को जाग्रत करना ही भक्ति का आधार है । आत्मभाव का अर्थ है दूसरों के सुख दु:ख के प्रति संवेदनशील होना और उनके सुख दु:ख को अपना ही समझना । कर्त्तव्य, प्रेम, उदारता के द्वारा आत्मभाव का जन्म होता है । यह कठिन नहीं है । तुम्हारी जेब में यदि १०० रुपये होते हैं तो तुम्हें १० रुपये दान के लिए निकालने कठिन प्रतीत होते हैं । यह उदारता नहीं है । धीरे –धीरे स्वार्थ वृत्ति को कम करो ।

अपनी चेतना का विस्तार करने के लिए गरीबों एवं जरूरत मंदों की मदद करो । हर व्यक्ति के मन में प्रेम एवं सम्मान की कामना होती है । यदि तुम ईश्वर को सर्वव्यापी समझते हो तो भूखे, प्यासे व्यक्ति के अन्दर भी ईश्वर को देखो । जब तुम अपने बच्चों के लिए जूते खरीदते हो तो एक जोड़ा जूता किसी अनजान गरीब बच्चे के लिए भी खरीदो । इसी प्रकार अपने बच्चों के लिए कपड़े खरीदते समय एक गरीब बच्चे के लिए कपड़े खरीदो । जब तुम दूसरों में उस परम तत्व को देख सकोगे, इस भाव से उनकी सेवा करोगे तो यही आत्मभाव है । और यही सबसे बड़ी भक्ति है ।

द्वितीय खण्ड - कर्म और कर्म योग

कर्म

कर्म शब्द की उत्पत्ति कृत धातु से हुई है । कृत का अर्थ है क्रिया । कर्म संसार का विधान है । इसकी झलक हमें प्रकृति में मिलती है । जहाँ पर शक्ति के द्वारा उत्कृष्ट एवं उत्तम क्रियाओं का सम्पादन किया जाता है वह प्रकृति है । प्रकृति में हर पग पर विविधता है । मनुष्यों में कोई गोरा है, कोई काला है, कोई मोटा है, कोई पतला है । विभिन्न प्रकार के वृक्ष एवं पशु-पक्षी हैं । शरीर पहले छोटा होता है, बड़ा होता है, वृद्ध हो जाता है और मर जाता है । विकास का यही क्रम कीटाणुओं, पशु–पक्षियों एवं वृक्षों में भी है । अंतर केवल इतना है कि मनुष्य को पता होता है अन्य प्राणियों को इस क्रम का ज्ञान नहीं है । मनुष्य को ईश्वर ने बुद्धि प्रदान की है।

कर्म का विधान ही कर्ता है – मनुष्य अपनी बुद्धि के द्वारा सोचता है कि वह इन्द्रियों के द्वारा कर्म कर रहा है, परन्तु ऐसा नहीं है । इन्द्रियों की अपनी कोई बुद्धि नहीं होती । कर्म का विधान इन्द्रियों के द्वारा हमसे कर्म करवा रहा है । दृश्य जगत जो गोचर है वह सभी कर्ममय है ।

कर्म का साथी – कर्म का साथी एवं सहयोगी धर्म है । आप चारो तरफ प्रकृति में दृष्टि घुमाइए और देखिए यहाँ हर कार्य एक निश्चित व्यवस्था के अनुरूप होता है । धर्म और कर्म दो जुड़वाँ भाई हैं जो जीवन एवं सृष्टि का आधार हैं । हम जब तक धर्म के अनुसार चलते हैं, हमारे कर्म नियंत्रण में रहते हैं, सही रहते हैं । जब धर्म का साथ छूट जाता है तो हमारे कर्म अनियंत्रित हो जाते हैं और हम गलत मार्ग पर चल पड़ते हैं ।

कर्म का बीजारोपण – संसार सर्वप्रथम अव्यक्त था । आकाश तत्व ही भूतों एवं जीवों का अधिष्ठान है । उस अन्तरिक्ष में स्पन्दन, चिन्तन मात्र था । वहाँ पर केवल एक ही विचार था । वह विचार था, ''एकोऽहम बहुस्याम । '' अर्थात् मैं एक हूँ और अनेक बनना चाहता हूँ । सृष्टि का मूल बीज कर्म है । कर्म को रूप प्रदान करने के लिए ऊर्जा की उत्पत्ति होती है । ऊर्जा और चेतना सनातन सत्य हैं । ऊर्जा और चेतना को विभिन्न मतों के अनुसार विभिन्न नाम दिए गए हैं । उदाहरणतया – तन्त्र में शक्ति एवं शिव, वेदान्त में माया एवं बह्म, सांख्य दर्शन में प्रकृति एवं पुरुष । चेतना केवल विचार उत्पन्न कर सकती है । उस विचार को मूर्तरूप देने के लिए ऊर्जा की उत्पत्ति होती है । शिव और शक्ति जगत के आधार बनते हैं ।

कर्म को समझना और सुव्यवस्थित करना – स्वामी सत्यानंद ने जब संन्यास ग्रहण किया तो

उन्होंने अपने गुरु स्वामी शिवानन्द से पूछा, ''अब मुझे क्या करना है ?'' स्वामी शिवानन्द ने कहा, ''आश्रम में रह कर रसोई कक्ष का काम संभालो, प्रेस का कार्य करो, टायपिंग करो ।'' स्वामी सत्यानंद ने कहा, ''यह सब काम तो मैं घर में रह कर भी कर सकता हूँ, इसके लिए मुझे आश्रम में रहने की क्या आवश्यकता है ?'' स्वामी शिवानन्द ने कहा, ''घर में जब तुम कर्म करोगे तो कर्मों से आसक्त हो जाओगे, तब तुम स्वयं को उन कर्मों के बंधन में बाँधोगे। गुरु आश्रम में रह कर तुम गुरु की सेवा के रूप में अपने समस्त कर्म गुरु के चरणों में समर्पित करो। इससे तुम्हारे पूर्वजन्मों के संचित कर्मों का क्षय होगा। आश्रम में तुम परिणाम से दूर रहोगे । '

अनेक व्यक्ति संन्यास लेकर कर्मों का त्याग कर देते हैं और ध्यान करने लग जाते हैं । वे सारा समय ईश्वर एवं सत्य का चिन्तन करने में ही व्यतीत करते हैं । साधना कर्मों के क्षय का उपाय नहीं है । ऐसे व्यक्तियों को हम ढोंगी अथवा बगुला भगत कहेंगे । साधना एक नए व्यक्तित्व को जन्म देती है, परन्तु कर्मों का क्षय तो करना ही पड़ता है । अनेक व्यक्ति केवल कर्म करते हैं, साधना नहीं, ऐसे व्यक्ति भौतिकता में गहराई तक डूब जाते हैं । हम संसार में जब सफलता प्राप्त करते हैं तो श्रेय स्वयं ले लेते हैं । जब असफलता मिलती है तो उसका दोषारोपण ईश्वर पर डाल देते हैं । एक शिष्य आश्रम में सफलता और असफलता दोनों गुरु को समर्पित करता है और अनासक्त रहता है ।

स्वामी सत्यानन्द ने जब योग को पूर्णरूपेण मुंगेर में स्थापित कर दिया एवं सम्पूर्ण विश्व में उसका प्रचार, प्रसार कर दिया तो उन्हें आभास हो गया कि वे कर्म बन्धन से मुक्त हो गए हैं । उनकी मानसिकता में परिवर्तन आया । उन्हें इतने भव्य आश्रम, स्थान, शिष्यों, नाम, यश एवं प्रतिष्ठा के साथ कोई आसक्ति नहीं थी । वे सहज रूप से इन सब का त्याग करके निकल गए । तीर्थ यात्रा के पश्चात् उन्होंने रिखिया में अपने कर्म का आधार सेवा, प्यार और दान बनाया । अनेक कठिन साधनाएँ करने के पश्चात् उन्होंने एक सुव्यवस्था के द्वारा कर्मों के दूसरे आयाम को पार किया । सन् 2003 से सन् 2009 तक वे एक जीवनमुक्त संत की भांति सार्वभौमिक कल्याण के लिए रिखिया में रहे । मैंने उन्हें शुकदेव, दत्तात्रेय जैसे संतों की भांति रहते हुए देखा है । वे प्रकृति के नियमों से मुक्त हो गए थे । इसलिए उन्होंने इच्छा मृत्यु का वरण किया । उनका जीवन एक दृष्टान्त है कि कर्मों का क्षय कर्मों के द्वारा ही हो सकता है केवल साधना और तपस्या के द्वारा नहीं । जो व्यक्ति अपने कर्मों का क्षय नहीं करते, उन्हें साधना एवं तपस्या के पश्चात् पुन: संसार से जुड़ना पड़ता है ।

कर्मों का प्राकट्य : हमारे जीवन में कर्म चार प्रकार से प्रकट होते हैं । जब इस जीवन की प्राप्ति होती है तो चाहे वह वृक्ष, कीटाणु, पशु, पक्षी अथवा किसी अन्य रूप में हो अपना निश्चित सॉफ्टवेयर प्रोग्राम लेकर इस पृथ्वी पर जन्म लेता है । जिस प्रकार हर कार्यक्षेत्र के लिए अलग सॉफ्टवेयर होता है उसी प्रकार हर व्यक्ति का सॉफ्टवेयर अलग होता है । उदाहरणतया स्कूल के लिए सॉफ्टवेयर शिक्षा से सम्बन्धित होता है तथा होटल के लिए सॉफ्टवेयर आवास, खानेपीने की व्यवस्था आदि से सम्बन्धित होता है । जीव के साफ्टवेयर में मुख्यत: चार चीजें होती हैं : 1. मूल प्रवृत्ति 2. स्वभाव 3. संस्कार 4. इन्द्रियों द्वारा की गई क्रिया ।

1. मूलप्रवृत्ति : इस के अन्दर मुख्य चार बिंदु हैं – अ) आहार ब) निद्रा स) भय ह) मैथुन

अ) आहार : बच्चा जन्म लेता है । भूख लगती है, रोता है और दूध पीता है । जन्म से मृत्यु तक यह कर्म जारी रहता है । वृद्धावस्था में भी व्यक्ति दूध ही पी पाता है क्योंकि दाँत टूट जाते हैं ।

ब) निद्रा : जन्म लिया, दूध पीया और सो गए, कोई होश हवास नहीं । वह कर्म आज तक बदला नहीं हैं अन्तकाल तक सोते हो और फिर चिरकाल में सोते हो ।

स) भय : बालक गर्भ से निकलता है रोता है । बड़ा आदमी जब भयभीत होता है तो वह विषादग्रस्त होता है, उसका नर्वस ब्रेकडाउन होता है । वृद्धावस्था में भय से हृदयघात हो जाता है ।

ह) मैथुन : बालक बड़ा होता है, लड़की की तरफ आकर्षित होता है । हर व्यक्ति के जीवन में वंशवृद्धि की इच्छा होती है ।

2. स्वभाव : स्वभाव का सम्बन्ध मनोवस्था से है । प्रत्येक व्यक्ति एक निश्चित स्वभाव लेकर जन्म लेता है उदाहरणताया क्रूर, कठोर, स्वार्थी, संकीर्ण अथवा उदार । एक स्त्री का स्वभाव सौम्य होता है और उसके अन्दर भावनात्मक संवेदनशीलता होती है, जबकि एक पुरुष में बौद्धिक कठोरता होती है और वह अड़ियल स्वभाव का होता है । स्वभाव कर्म का दूसरा नाम है जो आपको बनाता है ।

3. संस्कार : यह कर्म सूक्ष्मावस्था में जीव के अन्दर विद्यमान है । उदाहरणतया आप पैंसिल से एक कागज़ पर लकीर खींचते हैं । फिर आप उस लकीर को रबड़ से मिटा देते हैं । लकीर तो मिट जाती है परन्तु उसका दाग कागज़ पर रह जाता है । संस्कार वह कर्म है जो तुम्हारे कर्म को बनाएगा अथवा बिगाड़ेगा ।

4. इन्द्रियों द्वारा किया गया कर्म : हर इन्द्रिय की एक मूलप्रवृत्ति होती है । उदाहरणतया आँख देखती है, नाक सूँघती है आदि । प्रत्येक इन्द्रिय का गुण, स्वभाव व कर्म अलग है। इन्द्रियाँ मन के साथ मिल कर अपने स्वार्थ, सुख और वासना पूर्ति के लिए कर्म सम्पन्न करती हैं । इन्द्रियाँ विषयों से आकर्षित होती हैं और मन में इच्छा उत्पन्न होती है ।

संसार का विभाजन – संसार में मुख्यत: दो वर्ग हैं – १. गृहस्थ २. संन्यासी

गृहस्थ – सामान्य समाज का व्यक्ति अपने जीवन में नौकरी, नाम, यश, धन, सम्मान और प्रतिष्ठा चाहता है । यदि वह मोक्ष के मार्ग पर आता है तो उसका उद्देश्य होता है शान्ति, समझौता । जब वह शान्ति, समझौता और संतोष प्राप्त कर लेता है तो वह एक सद्गृहस्थ बनता है । ऐसा व्यक्ति धीरे–धीरे साधना, मंत्र जप एवं सत्संग के द्वारा स्वयं को विषयों के आर्कषणों से मुक्त करने की कला का विकास करता है । वह संसार में ही रहता है, सब कर्तव्य कुशलता पूर्वक करता है, परन्तु वासनाओं और कामनाओं से मुक्त रहता है । उदाहरणतया राजा जनक संसार में रहते थे । वे राज्य का समस्त कार्यभार संभालते थे, परन्तु उसमें आसक्त नहीं होते थे । एक कहानी उनके बारे में प्रचलित है । एक बार वे प्रशासन का कोई कार्य कर रहे थे, एक सेवक ने आकर सूचना दी, ' अमुक महल में आग लग गई है । ' राजा जनक निर्लिप्त भाव से अपना कार्य करते रहे । आपके घर को यदि आग लग जाती है तो आप स्वयं पानी की बाल्टी ले कर भागते हो, दु:खी हो जाते हो । क्यों ? क्योंकि आसक्ति है । राजा जनक जैसे व्यक्ति को विदेह मुक्त कहा जाता है । एक गृहस्थ की परिणति होती है विदेह मुक्त जो एक उच्चावस्था है ।

संन्यासी : एक सच्चा संन्यासी पहले से ही विदेह मुक्त होता है क्योंकि वह विषयों के आकर्षण, इच्छाओं, और कामनाओं से मुक्त होता है । एक संन्यासी साधना के मार्ग का चयन जीवन मुक्त बनने के लिए करता है । वह शनै:–शनै: साधना के द्वारा अपने कर्मों का क्षय कर्मों के द्वारा ही करना सीखता है । उदाहरणतया यदि आश्रम में आग लग जाती है तो सूचना मिलने से भी हम वहाँ आग बुझाने स्वयं नहीं जाते हैं, जो इन्चार्ज है वही उस व्यवस्था को संभालता है और बाद में पुनर्निमाण की व्यवस्था की जाती है ।

चेतना के पुनर्जन्म का सिद्धान्त – भारतीय परम्परा में चेतना के पुनर्जन्म का सिद्धान्त है । आदिशंकराचार्य ने लिखा है, ''पुनरपि जन्मं, पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम् ।''

जब तक जीव को कर्मों के भोग भोगने हैं जन्म–मृत्यु का चक्र अनवरत चलता रहता है । भगवान श्री कृष्ण ने साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व गीता में कहा है ''जब जीव एक शरीर को छोड़ता है और दूसरे शरीर में प्रवेश करता है उसके ६ मित्र साथ होते हैं । वे ६ मित्र हैं उसकी ५ इन्द्रियाँ और एक मन । जिस प्रकार आप यात्रा में अपना सब सामान साथ ले कर चलते हो, उसी प्रकार इस अनन्त की यात्रा में जीव इन ६ मित्रों को अपने साथ ले कर चलता है । जैसे शरीर का क्रमिक विकास होता है, प्राणी पहले छोटा बच्चा होता है, फिर युवा होता है फिर बूढ़ा हो जाता है, वैसे ही आपके बिना जाने ही आत्मा का क्रमविकास होता है । मन का भी सतत विकस हमारे जाने बिना ही होता रहता है । धीरे–धीरे मन सजग रहना और द्रष्टा (देखने वाला) बनने की प्रक्रिया को सीखता है । उदाहरणतया शुकदेव जी अनेक वर्षों तक अपनी माता के गर्भ में ही रहे । जन्म होते ही वे जंगल की तरफ दौड़े क्योंकि वे माया के बन्धन में नहीं फँसना चाहते थे । जन्म से ही वे जीवन मुक्त थे, सन्तों को शरीर, मन एवं इन्द्रियों का धर्म स्पर्श नहीं करता है । जब वे जंगल की ओर दौड़ते जा रहे थे, उनके पिता महर्षि व्यास उनके मोह में आसक्त हो कर उनके पीछे–पीछे दौड़े उन्हें वापस बुलाने के लिए । रास्ते में एक तालाब पर कुछ युवतियाँ स्नान कर रही थी । जब उन्होंने व्यास जी को आते देखा तो वे तुरन्त अपना तन ढकने का प्रयास करने लगी । व्यास जी ने उनसे कहा, ''मेरा युवा पुत्र शुकदेव यहाँ से दौड़ते हुए अभी–अभी गया है, तब तुमने अपना तन ढकने का प्रयास नहीं किया । मैं तो वयोवृद्ध हूँ, फिर मुझसे कैसी लज्जा ?'' एक युवती ने कहा, ''आपका पुत्र संसार से नहीं जुड़ा है, अत: उसके मन में कोई विकार नहीं है । आप तो संसार से जुड़े हैं अत: आपका मन विकार रहित नहीं है । अत: मर्यादा के अनुसार तन ढकना ही उचित है । ''

कर्मों का आधार – सृष्टि में सर्वत्र विविधता का साम्राज्य है । हर व्यक्ति का रूप, रंग, ढंग और व्यवहार दूसरे व्यक्ति से पृथक होता है । आखिर क्यों ? प्रारब्ध जो पुनर्जनम के सिद्धान्त पर आधारित है वह मनुष्य के कर्मों को प्रभावित करता है । प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में मूल सॉफ्टवेयर (मूल प्रकृति–आहार, भय, मैथुन और निद्रा, स्वभाव, संस्कार और इन्द्रानुभूति) लेकर जन्म लेता है । तीन गुण सत्त्व, रजो एवं तमो भी मनुष्य को प्रभावित करते हैं ।

सत्त्व का अर्थ है प्रकाश का स्वभाव । रजो का अर्थ है क्रिया का स्वभाव । तमो का अर्थ है एक अवस्था को प्राप्त होना । उदाहरणतया एक खाली जमीन सत्त्वावस्था में है । जब उस ज़मीन के

ऊपर भवन निर्माण का कार्य होता है तो वह रजो गुण है । जब उस भवन का निर्माण पूरा हो जाता है, वह भवन वहीं स्थिर है यह तमो गुण है । कोई भी गुण अच्छा या बुरा नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति में किसी एक गुण की प्रधानता रहती है । इन गुणों से प्रभावित हो कर मन की अभिव्यक्ति बदलती है । जन्म से पहले ये गुण साम्यावस्था में रहते हैं । प्रारब्ध के कारण जन्म होने के पश्चात् इन गुणों की विभिन्नता होती है ।

ईश्वर ने मनुष्य को बुद्धि प्रदान की है । बुद्धि मन से अलग है । बुद्धि ही मनुष्य को पशु से अलग करती है । बुद्धि अगर सही दिशा में चलती है तो मनुष्य बुद्ध जैसा महात्मा बन सकता है । बुद्धि अगर गलत दिशा में चलती है तो मनुष्य बुद्धू बन कर रह जाता है । बोध के लिए ही हमें बुद्धि की प्राप्ति हुई है । मन जब प्रकृति के क्षेत्र में रहता है वह इन तीन गुणों को धारण करता है । वेदों में मन को अजर और अविनाशी कहा गया है । कर्मों के भोग के लिए ही मनुष्य का जन्म होता है । शास्त्रों में ऐसा कहा गया है, ''जो विचार अन्त समय में व्यक्ति के दिमाग में आता है, वही विचार उसका दूसरा जन्म निर्धारित करता है । मृत्यु के पश्चात् लोग बोलते हैं, ''राम नाम सत्य है'' यह वाक्य मृत्यु से पूर्व बोला जाना चाहिए ताकि मरणासन्न व्यक्ति की विचारधारा और चिंतन भगवान की ओर मुड़े । अन्तिम समय का वही संस्कार निशान के रूप में रह जाता है । इसी प्रकार पूरे जीवन में तुम विचार करते (लिखते हो मन के कागज पर) हो, मिटाते हो । पर उनके दाग रह जाते हैं । यही प्रारब्ध बनता है ।

अध्यात्म

जब व्यक्ति आध्यात्मिक चिन्तन करता है तो वह स्वयं को जानने का प्रयास करता है तब उसे रहस्य की जानकारी मिलती है । उसकी विचारधारा बदलती है । वह जीवन की अनित्यता को समझने लगता है । वह अपनी आत्मा को परमात्मा से जोड़ने का प्रयास करता है । यह प्रयास हर जीवन में अचेतन है और मनुष्य में बौद्धिक (बुद्धि के स्तर पर) है । उदाहरणतया पौधा ऊपर की तरफ ही बढ़ता है । अग्नि प्रज्वलित की जाती है तो उसकी लपटें आकाश की तरफ ऊपर उठती हैं । अव्यक्त में मन की ऊर्जा भी उर्ध्वगामी होती है परन्तु विषय भोगों के आकर्षण में फँस कर हम इसे अधेगामी बनाते हैं । हम सबका जन्म प्रारब्ध, गुण एवं मूल प्रवृत्ति के साथ ही हुआ है । यही तीन अवयव हमारे चरित्र का निर्माण करते हैं और हमारा सम्पूर्ण जीवन प्रभावित करते हैं ।

जीवन का मूल संघर्ष – दु:खों से मुक्ति : संसार में 99% लोग जन्म लेते हैं; विवाह, बच्चे और फिर सेवानिवृत्त हो कर मर जाते हैं । इस जीवन में प्रत्येक व्यक्ति सुख की ओर दौड़ रहा है । इस शरीर के साथ सुख और दु:ख दोनों ही लगे हुए हैं । परन्तु प्रत्येक व्यक्ति केवल और केवल सुख चाहता है । सुख की प्राप्ति एक ऐसे मन में होती है जो स्वतन्त्र है, पराधीन नहीं है । ऐसा मन आनन्द की स्थिति में रहता है । संसार की वस्तुओं से आपको कुछ क्षण के लिए सुख की झलक मात्र प्राप्त होती है । संसार में यह अवधारणा है कि जो पढ़–लिख लेता है, वह सुख प्राप्त कर सकता है । गँवार और अनपढ़ व्यक्ति को कोई भी पसन्द नहीं करता है । व्यक्ति के जीवन में संघर्ष की शुरूआत दु:ख से ही होती है । राजकुमार सिद्धार्थ ने जब दु:ख देखा, तभी वह महात्मा बुद्ध बने । जीवन में पुरुषार्थ का लक्ष्य है सुख और यह सुख किसी को मिलता है, किसी को नहीं मिलता है । जब दु:ख आता है तो आपको वह पहाड़ की भाँति लगता है, आपको बेचैनी और संकीर्णता का अनुभव होता है । सुख में आप आनन्दित रहते हैं और आपको लगता है आप उड़ रहे हैं । अध्यात्म के द्वारा दु:ख की निवृत्ति संभव है । मोक्ष का अर्थ ईश्वर प्राप्ति नहीं है अपितु स्वयं को बंधनों से मुक्त करना है । अब यह सवाल मन में आता है किस का बंधन ? यह बंधन मन और इन्द्रियों का नहीं है । पति–पत्नी और बच्चे तो आपके जीवन में कुछ काल (40–60 वर्ष) के लिए आते हैं । मन और इन्द्रियाँ तो आपके साथ जन्म से मृत्यु तक हैं । हम मुक्त होना चाहते हैं उन परिणामों और परिस्थितियों से जो हमारे जीवन में दु:ख, क्लेश, अभिनिवेश, अज्ञान का कारण हैं। जब दु:ख आता है तो मूलप्रवृत्ति और गुण प्रभावित होते हैं, व्यक्ति तामसिक होने लगता है । जब आप सुखी होते है तो आनन्द में रहते हैं और सात्विक भाव प्रमुख रहता है । कर्म का मूल प्रयोजन है सुख की प्राप्ति ।

जीवन में दु:ख का महत्व – मनीषियों ने कहा है कि आध्यात्मिक दर्शन के अनुसार दु:ख मनुष्य को पुरुषार्थ के लिए प्रेरित करता है एवं सुख उसे दुर्बल बनाता है । जो व्यक्ति दु:ख झेलता है उसका मन मज़बूत बनता है । यदि राजकुमार सिद्धार्थ केवल सुख ही में रहते तो वे महात्मा बुद्ध कभी भी नहीं बन सकते थे; वे केवल राजा बन कर ही रह जाते । दु:ख से अद्वितीय शक्ति प्राप्त होती है और मानव संघर्ष करना सीखता है । महाभारत का युद्ध समाप्त होने के पश्चात् जब युधिष्ठिर को राजसिंहासन मिल गया तो भगवान श्री कृष्ण सबसे विदाई

लेने के लिए गए । श्री कृष्ण ने कुन्ती से कहा, 'बुआ, अब आपके जीवन में कोई कष्ट एवं दु:ख नहीं है; सर्वत्र सुख, शान्ति, धर्म और समृद्धि की स्थापना हो गई है । मेरा कार्य पूर्ण हुआ । अब मैं जाना चाहता हूँ । आपकी कोई कामना शेष हो तो कहिए । कुन्ती कहती है, ''कृष्ण दु:ख में तुम हमेशा हमारे साथ थे । मेरी कामना है, मुझे जीवन में सदैव दु:ख ही मिले ताकि तुम हमारे साथ हमेशा रहो ।'' कितने लोग आज ईश्वर से दु:ख माँगते हैं ?

अध्यात्म और ईश्वर की ओर एक दु:खी व्यक्ति ही जाता है । सुखी व्यक्ति कभी भी मंदिर या देवालय नही जाता । उसे लगता है, 'वहाँ जाकर जेब खाली हो जाएगी ।' एक साधु की जेब खाली होती है, वह न सुख चाहता है और न दुख । वह सदैव ईश्वर प्रेम की मस्ती में रहता है ।

जीवन में दु:ख का प्रयोजन – माँ बच्चे को चॉकलेट देती है, बच्चा सदैव वही माँगता है और नहीं मिलने से रोने लगता है । व्यक्ति को सुख से आकर्षण और दु:ख से विकर्षण होता है । सुख और दुख प्रकृति की रचना है जिसे योग माया कहा गया है । माया अपने बेटों की एक शिक्षक की भाँति परीक्षा लेती है । एक बच्चा स्कूल जाता है । कक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए उसे परीक्षा देनी पड़ती है । परीक्षा में अनेक कठिन प्रश्नों का उत्तर भी उसे देना पड़ता है । ईसामसीह और बुद्ध जब तपस्या कर रहे थे तो शैतान ने उनको अनेक प्रलोभनों के द्वारा अपने मार्ग से विचलित करना चाहा था । जब वे भगवान का मार्ग छोड़ने को तैयार नहीं हुए तो शैतान ने उनको अनेक कष्ट दिए, डराया और धमकाया । हमारी मानसिकता तमस की है । धन मिल जाए; इच्छाएँ पूरी हो जाएँ; बीमारी ठीक हो जाए; हम सारा जीवन क्षणिक सुख के पीछे भागते ही रहते हैं ।

मानव जीवन का उद्देश्य – मानव जीवन का उद्देश्य है स्वंय को माया के बंधनों से मुक्त करना । एक तपस्वी जीवन में सुख का त्याग करता है । वह बुद्धि, चित्त, अंहकार और इन्द्रियों के प्रति सजग रहता है और उनके परिणामों से स्वयं को मुक्त रखता है । तपस्वी का जीवन सत्त्व प्रधान होता है । गीता में कहा गया है कर्मों से बंधन मुक्त फल प्राप्त होते हैं । तमो प्रधान कर्मों से व्यक्ति बंधन में जकड़ता है । रजो प्रधान कर्मों के मिश्रित फल होते हैं ।

आश्रम का प्रयोजन – आश्रम में संन्यासी अथवा आप जब आते हैं, वही काम करते हैं जो घर

में करते हैं । यहाँ आप जो भी कर्म करते हैं वह गुरु को समर्पित करते हैं एवं उचित, अनुचित; धर्म, अधर्म का ख्याल करते हैं । यदि आप कर्मों को ठीक प्रकार से नहीं करते तो गुरु का डंडा पड़ता है । आपको बार–बार अपना व्यवहार एवं दृष्टिकोण सुधारने की चेतावनी दी जाती है । आप धीरे–धीरे द्रष्टा भाव लाने की कला को सीखते हैं । घर में यह कार्य बहुत कठिन है क्योंकि वहाँ सजगता का अभाव रहता है ।

कर्मों के फलों के बन्धन से कैसे मुक्त रहें ?– गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है 'कर्म के फल का त्याग करो ' परन्तु यथार्थ जीवन में ऐसा करना बहुत कठिन है । प्रत्येक व्यक्ति फल की आशा करता है और उसी से प्रोत्साहित होकर कर्म सम्पादित करता है । हम भी फल की आशा करते हैं । हम संन्यास के मार्ग पर चलते हुए एक साधु एवं जीवन मुक्त बनना चाहते है। यह आशा हमें अपने मार्ग एवं लक्ष्य पर दृढ़ रखती है, अन्यथा हम भटक सकते हैं ।

जीवन में कर्मों को करते हुए उनके प्रति आसक्त मत बनो । कर्मों के फल के पीछे पागल मत बन जाओ । सफलता और असफलता में अपने मन को संतुलित रखने का प्रयास करो । जो प्रयास तुम करते हो उसके प्रति सजग रहो और फल की आशा रहते हुए भी मन को संतुष्ट और प्रसन्न रखो । स्वयं को सफलता और असफलता से मत जोड़ो । जब कर्मों में समत्व आता है तो उसे ही कर्मयोग कहा जाता है । आनन्द की प्राप्ति होती है । मन को सुव्यवस्थित एवं संतुलित करने के पश्चात् ही व्यक्ति स्वयं को सुख और दु:ख के भोगों से मुक्त कर पाता है । अच्छे कर्म का फल सदैव अच्छा होता है एवं बुरे कर्म का फल बुरा होता है, यही बात सदैव याद रखो । आम का बीज बोने से आम का वृक्ष ही पैदा होता है और बबूल का बीज़ बोने से बबूल का काँटेदार वृक्ष ही पैदा होता है ।

हम कर्म कैसे करते हैं ?– हम वाणी, मन और इन्द्रियों द्वारा कर्म करते हैं । वाणी के द्वारा जो कुछ भी बोलते हैं वह मधुर हो, प्रियकारी हो, यह ध्यान रखना चाहिए । सोच समझकर बोलो । एक राजा ने एक बार अपनी जन्म कुण्डली ज्योतिषी को दिखाई । ज्योतिषी ने कहा, ''महाराज आप अपने पूरे कुल का नाश होते देखेंगे, बहुत भयंकर कुण्डली है । '' राजा ने क्रोधित हो कर उस ज्योतिषी को जेल में डलवा दिया । उस ज्योतिषी के मित्र ने अपने मित्र को बन्धन मुक्त करवाने के लिए एक उपाय किया । वह राजदरबार में गया और राजा से उसकी जन्म कुण्डली दिखाने का निवेदन किया । उस ज्योतिषी ने कहा, '' महाराज आपकी कुण्डली अद्‌भुत है ।

आप की आयु बहुत लम्बी है । आपके स्वजन चले जाएँगे, परन्तु आप सब को पार कर जाएँगे । '' राजा ने प्रसन्न हो कर उसे मालामाल कर दिया । यह है वाणी का चमत्कार ! शास्त्रों में कहा गया है – अप्रिय और दु:ख कारक मत बोलो ।

मन के द्वारा भी हम कर्म करते हैं । मन में इच्छा उत्पन्न होती है । इच्छा वस्तु से जुड़ी रहती है ; प्राप्ति एवं उपलब्धि से जुड़ी रहती है । मन में यदि तमो गुण की प्रधानता रहती है तो कर्म का रूप विकृत हो जाता है । एक शान्त मन दक्षता पूर्वक कार्य कर सकता है । मन और गुण के मिलन से मूड बनता है । कर्म करते हुए समभाव रखने से वह कर्म, कर्मयोग में परिवर्तित हो जाता है । यह समभाव साधना के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है । प्रथम साधना आन्तरिक है । मन्त्र जप, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के अभ्यास के द्वारा व्यक्ति दु:ख और सुख को समान भाव से स्वीकार करना सीखता है । एक अवस्था ऐसी आती है जब उसका मन शान्त हो जाता है वह कर्म को योग से जोड़ पाता है ।

मन का अनुभव कब होता है ? मन के चार अंग हैं मनस, बुद्धि, चित्त और अंहकार । विचारों, इच्छाओं एवं महत्वाकांक्षाओं के द्वारा मन में चंचलता आती है । जब मन में चिन्ता और परेशानी आती है तो व्यक्ति को मन का आभास होता है । मन वास्तव में इस जीवन का रसोईघर है । मन, वासनाओं, महत्वाकांक्षाओं को परिवेश से ग्रहण करता है । मनस में सब्जी काटते हो, चित्त से पानी डालते हो, बुद्धि से मसाला डाल कर अंहकार रूपी बर्तन में खिचड़ी पकाते हो । मन में पकाई हुई खिचड़ी के कारण ही जीवन में ईर्ष्या, घृणा, द्वेष इत्यादि होते हैं । जीवन में परेशानियों दुखों का कारण है हमारी अन्तर्निहित वासनाएँ, इच्छाएँ और महत्वाकाक्षाएँ । मनीषियों ने कहा है, ''वासना से कभी भी सुख प्राप्त नहीं होता, यदि सुख मिलता भी है तो वह क्षणिक होता है । '' शास्त्रों में इच्छा को सगर्भा कहा गया है अर्थात एक इच्छा के पूरी होते ही दूसरी इच्छा उत्पन्न हो जाती है । इच्छाएँ अनन्त हैं ।

आध्यात्मिक उन्नति का मापदण्ड – अनेक साधकों के मन में यह प्रश्न उठता है कि हम आध्यात्मिक पथ में उन्नति कर रहे है या नहीं । साधारणतया लोग आन्तरिक अनुभूतियों एवं देवदर्शन होने से ही अपनी उन्नति को नापते हैं । परन्तु वह सही मापदण्ड नहीं है । शास्त्रों के अनुसार जब व्यक्ति की इच्छाओं, वासनाओं और महत्वाकांक्षाओं में कमी होने लगती है, तब उसे समझना चाहिए कि वह आध्यात्मिक पथ में उन्नति कर रहा है । जब इच्छाओं के पीछे

व्यक्ति अपना संयम नहीं खोता है, तब उसकी उन्नति होती है । जब व्यक्ति इच्छाओं की पूर्ति के लिए अपना संयम खोता है तब वह तामसिक वृत्ति को पोषित करता है ।

मन के दो रूप एवं बुद्धि – (उच्च तथा निम्न मन) मन जब शान्त अवस्था में रहता वह मनन करता है । एक शान्त मन से व्यापक एवं ब्रह्माण्डीय बुद्धि का अनुभव होता है । ऐसी बुद्धि को परा अर्थात उच्च मन कहा गया है । एक चंचल मन चिन्तन करता है; चिन्ता, परेशानी और तनाव का कारण बनता है । ऐसा मन भौतिक शरीर से जुड़ा रहता है और ऐसी बुद्धि को अपरा निम्न मन कहा गया है । हम लोग संसार के विषय भोगों से जुड़े रहते हैं । अपरा बुद्धि (निम्न मन) के कारण ज्ञान रहते हुए भी सही निर्णय ले नहीं पाते और हमारे कर्मों में संकीर्णता आती है । बुद्धि की अभिव्यक्ति के प्रति सजग बनो । अपरा बुद्धि (निम्न मन) जो देखती है उसे ही सही समझती है । उदाहरणतया तीन आदमी सुबह, दोपहर और शाम को गिरगिट के तीन अलग–अलग रंगों को देखकर वाद विवाद करते हैं । पराबुद्धि (उच्चमन) का व्यक्ति गिरगिट के स्वभाव को जानता है । अत: वह व्यर्थ के विवाद में नहीं उलझता है ।

चित्त – चित्त जीवन का गोदाम है । जन्म से लेकर जो भी वृतियाँ हैं, चित्त में संग्रहीत रहती हैं । आप कई वर्ष पहले हुई अपने जीवन की घटनाओं को स्मृति के माध्यम से याद करते हैं । उदाहरणतया अपनी शादी का क्षण अथवा सन्तान उत्पन्न होने का क्षण । चित्त और स्मृति उसी प्रकार एक दूसरे से जुड़े हैं जिस प्रकार हथेली और उँगलियाँ आपस में जुड़े हुए हैं । ध्यान की अवस्था में कई लोग अपने पूर्व जन्मों के कर्म एवं संस्कार भी देख पाते हैं । उदाहरणतया कई वर्ष पूर्व स्वामी सत्यानन्द के पास एक डॉक्टर असाध्य दमा के इलाज के लिए आया । श्री स्वामी जी ने उसे सारी दवाइयाँ छोड़ कर ध्यान करने के लिए प्रेरित किया । ३ माह के पश्चात् ध्यान की अवस्था में उसने अपने बाल्यकाल की एक घटना देखी । उसने देखा, माता–पिता काम पर चले गए । दाई उसे भोजन करवा रही है । वह भोजन इधर–उधर फेंक रहा है, दाई को तंग कर रहा है । दाई गले से पकड़ती है और बोलती है, 'पापा को बोलूँगी, दो चाँटे लगाएँगे'। स्वप्न समाप्त हो गया । इस स्वप्न के पश्चात् दमा 100% ठीक हो गया । वह डाक्टर शंकर देवानन्द है, जिन्होंने दमा और मधुमेह पर पुस्तक लिखी है । लोग कहते हैं यह योग एवं गुरुजी के आशीर्वाद का चमत्कार है । चित्त में एकत्रित कर्म और संस्कार कभी–कभी चेतन, अवचेतन तथा अचेतन स्तर पर उभर कर बाहर आते हैं ।

अंहकार – अंहकार एक नकारात्मक वृत्ति है और सबसे कठोर तत्व है । अंहकार रूपी हथौड़े **से चट्टान को भी तोड़ा जा सकता है । जीवन में अंहकार कई प्रकार से प्रकट होता है । 'मैं बड़ा आदमी हूँ ।' 'मुझे बैठने के लिए अच्छा स्थान नहीं दिया गया है ।' 'स्वामी जी ने मुझसे अच्छे से बात नहीं की, मेरी ओर देखा भी नहीं ।' एक ज्ञानी को भी अंहकार होता है । उदाहरणतया विश्वामित्र राजा थे । अनेक तपस्याएँ करने के पश्चात् वह राजर्षि बन गए । परन्तु उन्हें महर्षि वसिष्ठ से ईर्ष्या रहती थी, 'उन्हें ब्रह्मर्षि क्यों कहा जाता है ?' तुलनात्मक दृष्टि-कोण भी अंहकार का ही एक रूप है । इस अंहकार के कारण व्यक्ति अनेक स्वार्थमय कर्म करता है ।**

कर्मयोग – मन का प्रबंधन

मनस, बुद्धि, चित्त और अंहकार स्थूल हैं । मन में खिचड़ी पकती है उसमें तुम इच्छा, वासना, महत्वाकांक्षा अपने निम्न मन से डालते हो । तब मन में दु:ख और सुख का अनुभव होता है । गुण और मूलप्रवृत्तियों के मिश्रण में जब विकार उत्पन्न होता है तो निम्न मन में चंचलता आती है और संघर्ष प्रारम्भ होता है । जमीन में दबाने से एक बीज की कठोरता सूक्ष्म रूप से परिणत होती है और वह अंकुरित होता है । उच्चमन व्यक्ति के उत्थान का कारण बनता है और उसका व्यक्तित्व खिलता है । ध्यान के द्वारा उच्चमन का अनुभव किया जा सकता है । परन्तु निम्न मन में विकार के कारण ध्यान में भी संघर्ष चलता रहता है । उदाहरणतया यदि बगीचे में तुम जंगली पौधा ऊपर से ही खींच कर निकाल देते हो तो वह पुन: पुन: पैदा होता रहता है । अत: जमीन खोद कर उस जंगली पौधे को जड़ से निकालना पड़ता है ।

श्री स्वामी जी कहते थे घर में जब तक पति–पत्नी के बीच में लड़ाई–झगड़ा होता रहता है, कभी शान्ति नहीं रह सकती । पति–पत्नी तो परस्पर 30–40 साल से ही साथ हैं, यह मन तो जन्म से मृत्यु तक तुम्हारे साथ रहता है । यदि तुम इसके साथ लड़ाई करते हो तो तुम शान्ति प्राप्त नहीं कर सकते । हमारे जीवन में कलह, क्लेश, घृणा, ईर्ष्या, द्वेष और क्रोध का कारण हमारा मन है । जब हम अपने मन से समझौता कर लेते हैं तो हमारा वातावरण हमें अशान्त नहीं कर सकता है ।

संयम का महत्व – अपने मन को संयम की लगाम से व्यवस्थित करके चलो । मन को स्वतंत्र मत छोड़ो । भारतीय संस्कृति में संयम का प्रावधान है । मन जब बेलगाम दौड़ता है तो अधिकार की माँग करता है । मन जब संयमित होता है तो कर्तव्य से जुड़ता है ।

अंहकार को व्यवस्थित करना – मनस, बुद्धि और चित्त में सूक्ष्म रूप से कर्मों का सृजन होता है और जीवन में उनकी अभिव्यक्ति अंहाकार के साथ मिलने से होती है । अंहकार से लड़ना है हाथी से कुश्ती करना । यदि तुम हाथी के साथ कुश्ती करोगे तो चोट किसे लगेगी, तुम्हें ही न? जब तुम्हारी भावना विषय भोग की ओर प्रवाहित होती है तो तुम्हारे अंहकार में वृद्धि होती है । एक साधु भी जब विषय भोगों की ओर प्रवृत्त होता है, उसके अंहकार में वृद्धि होती है ।

अंहकार ही मनुष्य को कर्म बंधन में जकड़ता है । पहले अंहकार से मुक्त हो तब दु:ख और माया से मुक्त हो सकोगे । एक अंहकारी चेला एक बार स्वामी सत्यानन्द के पीछे पड़ गया । वह गुरु जी से मोक्ष प्राप्ति के लिए मंत्र माँगने लगा । गुरुजी ने बहुत समझाया पर वह न माना । गुरु जी ने उसको 'अहम् ब्रह्मस्मि' मंत्र दे दिया और कहा कमरे में बैठ कर निरन्तर जप करो । एक माह के बाद चेला बाहर आया और कहने लगा गुरुजी मुझे ब्रह्म की अनुभूति हो रही है । प्रत्येक जड़ चेतन (वृक्ष, पशु,पक्षी, मनुष्य) में मुझे ब्रह्म दिखाई दे रहा है । गुरुजी ने सब्जी लाने के लिए उसे बाजार भेजा । बाजार में भगदड़ मची हुई थी । एक व्यक्ति ने चेले को कहा, 'एक पागल हाथी बाजार में घुस आया है । यहाँ से भाग जाओ ।' चेला सोचने लगा, उस हाथी में भी ब्रह्म है । अत: वह चलता गया और पागल हाथी ने उसे सूँड में लपेटा और जोर से पटक दिया । हाथ पैर की हड्डियाँ टूट गई । जब मरहम पट्टी और प्लास्टर करवा के वह आश्रम पहुँचा तो गुरु जी को सारी कहानी सुनाई । गुरुजी ने कहा, 'तुमने उस आदमी में ब्रह्म नहीं देखा जो तुम्हें रोकने का प्रयास कर रहा था ।'

विनम्रता – अंहकार की पूंछ को सीधा करना कुत्ते की पूंछ को सीधा करने से भी अधिक कठिन है । विनम्रता की तलवार से अंहकार की पूंछ को काटा जा सकता है । ध्यान में साक्षी भाव से अपने अंहकार को देखते जाओ और विनम्रता का सद्गुण दृढ़ता से रोपित करते जाओ। जब तुम्हारी इन्द्रियाँ विषय भोगों की ओर जाती हैं तो मन चंचल हो जाता है । इन्द्रियों की दिशा को बदल दो । यदि हमारा तुम्हारा झगड़ा होता है और तुम हमें गाली देते हो तो हम शान्त रहेंगे। महात्मा बुद्ध को एक व्यक्ति ने बहुत गालियाँ दी । जब वह व्यक्ति चुप हुआ तो बुद्ध ने कहा, ''तुम्हारा उपहार मैं तुम्हें वापस करता हूँ ।'' जब तुम देखो कि अंहकार के कारण मन चंचल हो रहा है तो लड़ो मत, मन को शांत रखो ।

सद्गुणों को आश्रय दो – प्रबल क्रोध, ईर्ष्या, लोभ आदि दुर्गुणों के कारण आते हैं । स्नेह, प्रेम और करुणा सद्गुणों का परिणाम हैं । अपनी मूलप्रवृत्तियों, स्वभाव, इन्द्रियों के प्रति सजग रहो ।

आत्मनिरीक्षण एवं आत्म परीक्षण – प्रतिदिन आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने मन को समझो और धीरे –धीरे मूल प्रवृत्तियों (भय, आहार, कामवासना, निद्रा) के प्रति सजग बनो । पुरुषार्थ तो मनुष्य को ही करना पड़ता है । मूल प्रवृत्तियाँ प्रबल हो जाने से व्यक्ति कामातुर हो जाता है अपनी महत्वाकांक्षाओं, आवश्यकताओं, धन की प्राप्ति की इच्छाओं की पूर्ति के लिए । जब भय और लज्जा नहीं रहती तो जीवन में अराजकता आती है । जब व्यक्ति आहार का संयम नहीं करता तो दुष्परिणाम रोग के रूप में सामने आता है । सजगता, आत्मनिरीक्षण एवं आत्मपरीक्षण के द्वारा हम स्वयं को इन वृत्तियों से मुक्त कर सकते हैं ।

आश्रम प्रवास – एक धनी व्यक्ति जब आश्रम में आकर रहता है और यदि उसे अपना कमरा साफ करने के लिए एक झाड़ू पकड़ा दी जाती है; उसके अंहकार पर चोट लगती है । कुछ समय के लिए आश्रम में आकर रहो और यहाँ के नियमों और अनुशासनों का पालन करते हुए अपने मन के अन्दर उठने वाली वृतियों को समझो ।

स्वामी सत्यानन्द का प्रशिक्षण

आज हम यहाँ गुरुजी के प्रशिक्षण के कारण हैं न कि 8 घंटे ध्यान के अभ्यास के कारण । हमने आरम्भ में मुंगेर में (1963 – 1977) बहुत सादा जीवन व्यतीत किया है, सब्जी खरीदने के लिए पैसे नहीं थे । बाज़ार से फेंके हुए सब्जियों के पत्ते एक बोरे में इकट्ठे कर के लाते थे । उनमें से सड़े हुए भाग को काट कर फेंक दिया जाता था । बाकी हरे पत्ते की सब्जी बनाते थे । यदि नमक भोजन में मिल जाता था, तो हमारी दावत हो जाती थी । सर्दी, गर्मी और बरसात में खुले में ही सोते थे । बरसात में ऊपर प्लास्टिक शीट लगा लेते थे । हमने बहुत संघर्ष किया है । संघर्ष के समय अपने निम्न मन, निम्न स्मृतियों और निम्न अंहकार को प्रतिदिन अपने अन्दर सिर, उठाते हुए देखा है । मुझे गुरु जी ने उन मानसिक वृत्तियों और परिस्थितियों का सामना करना सिखाया । यह कर्मयोग का व्यावहारिक अभ्यास है । – संकलित

कर्मों से बन्धन अथवा मोक्ष

आज अन्तिम दिन मैं आपको संक्षिप्त में बताऊँगा । कर्मों की व्याख्या, सिद्धान्त एवं परिणाम को समझने का प्रयास करो । अपने मन की विभिन्न वृत्तियों को समझते हुए अपने जीवन में मूल प्रवृत्ति और गुण की प्रधानता के प्रति सजग बनो । निम्न मन केवल अंहकार, निम्न बुद्धि को ही पोषित करता है । व्यक्ति नाम, यश, पद प्रतिष्ठा और अपने सुख की खोज में सदैव लिप्त रहता है । मनीषि कहते हैं कि उच्च अवस्था का अनुभव संभव है, व्यक्ति परमार्थवृत्ति के द्वारा स्वयं को परमात्मा से जोड़ सकता है । मन की निम्न स्थिति के प्रति सजग बनते हुए उसे ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए पुरुषार्थ करो । परमार्थ के द्वारा आप आत्मा की व्यापकता और ब्राह्मी वृत्ति का सतत अनुभव कर सकते हैं ।

मन की उच्च अवस्था का अनुभव करने के लिए अपनी वासनाओं, इच्छाओं एवं महत्वाकांक्षाओं को कम करते जाओ । जिस प्रकार जब पेड़ बहुत ऊँचा हो जाता है तो उसकी कटाई छटाँई करनी आवश्यक है; उसी प्रकार अपनी अनुपयोगी इच्छाओं एवं कामनाओं की कटाई करते जाओ । हम संन्यासी अपनी इच्छाओं को द्रष्टा भाव से देखते हैं । आपको केवल अपनी मानसिकता, भाव और दृष्टिकोण को बदलना है । आलस्य को अपने जीवन से दूर भगाओ । नियमित मंत्र जप, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के अभ्यासों से उच्च मन को शक्तिशाली बनाओ । अपने मन को स्वार्थ से परमार्थ की ओर धीरे–धीरे मोड़ते जाओ । अपने मन की वृत्तियों का निरोध (शान्त) करना है उनका विरोध अथवा अवरोध नहीं करना है ।

कर्म जीवन में पाँच प्रकार से प्रकट होता है ।

1. स्वार्थ पूरित कर्म – जो कर्म तुम अपने तथा अपने परिवार के हित के लिए करते हो । उदाहरणतया नौकरी, व्यापार ।
2. निष्काम कर्म – जो कर्म तुम दूसरों की मदद के लिए करते हो । उदाहरणतया असक्षम भिखारी को रुपये से मदद करते हो । धर्मशाला अथवा प्याऊ खुलवाए जाते हैं ।
   सामाजिक कर्म – समाज की व्यवस्था की ठीक करने के लिए जो कर्म किया जाता है । उदाहरणतया रिखिया में 70 गाँवों और 55000 परिवारों की मदद की जाती है । उसमें हमारा कोई स्वार्थ नहीं है । ऐसे कार्यों में समूह को लाभ प्राप्त होता है ।

3. प्रारब्ध प्रेरित कर्म – जन्म, रोग, वृद्धावस्था और मृत्यु, शरीर के आवश्यक प्रारब्ध प्रेरित कर्म हैं । व्यक्ति का इन कर्मों पर कोई नियन्त्रण नहीं होता है ।
4. संचित कर्म – कई जन्मों के संचित कर्म मनुष्य के चेतन, अवचेतन ओर अचेतन मन में रहते हैं जैसे बैंक के फिकस डिपाज़िट में आपका पैसा जमा रहता है । ये कर्म हमारे दु:ख और सुख के रूप में प्रकट होते हैं, इनको बदलना असंभव है ।
5. दैविक कर्म–तुम्हारी आध्यात्मिक साधना दैविक कर्म है । जो कर्म व्यक्ति उच्च अवस्थाओं एवं आत्मा का अनुभव करने के लिए करता है, वे दैविक कर्म है । अपने अन्तर में शान्ति, संतुलन और प्रकाश का अनुभव प्राप्त करने के लिए किए जाने वाले कर्म दैविक कर्म हैं । जब व्यक्ति पूर्णतया ईश्वर को समर्पण कर देता है तो ईश्वर उसे अपना यन्त्र बनाता है और उसके माध्यम से स्वयं कार्य करता है ।

अपने जीवन में अंहकार, सकाम कर्म, निष्काम कर्म एवं परोपकार पर अपनी दृष्टि केन्द्रित करो । इन चारों को व्यवस्थित करते–करते हम संसार में रहते हुए दूसरों के कार्यों से अप्रभावित रह सकते हैं । अपने जीवन में लोगों की बातें सुन कर प्रतिक्रिया मत करो; अप्रभावित रहने का प्रयास करो । विवेक का प्रयोग करते हुए जीवन में प्रत्येक परिस्थिति को सकारात्मक रूप से स्वीकार करो ।

कर्म जब धर्म के साथ जुड़ता है तो वह फलित होता है । ऐसा कर्म जीवन में कर्तव्य का रूप ले लेता है । उदाहरणतया अपने बच्चों को पढ़ाना, लिखाना व उनका विवाह करना आपका कर्तव्य है । यदि आप प्रत्येक कर्म को कर्तव्य के रूप में करते हैं तो आप कर्मयोगी हैं । साधना के द्वारा व्यक्ति अपने अंहकार से समझौता करना सीखता है । अंहकार ही कर्म में बाँधता है और धर्म से विमुख कर देता है । अंहकार के कारण आप पद, प्रतिष्ठा, नाम और यश के प्रति सजग होते हैं । अंहकार वासना से प्रकट होता है । मानवीय धर्म का पालन करते हुए, अपने अंहकार को विनम्रता की तलवार से काटते जाओ । अपने लिए कर्म करते हुए, दूसरों के उत्थान के लिए भी कर्म करो, यही कर्मयोग है जो एक आन्तरिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति के अन्त:करण की शुद्धि होती है और वह उच्च अवस्थाओं के सतत अनुभव में रह सकता है ।

तृतीय खण्ड 2011 गुरु पूर्णिमा सत्संग

प्रथम दिवस – 12.07.11

श्री स्वामी सत्यानंद और मुंगेर

मेरे गुरु परमहंस स्वामी सत्यानंद जी के निर्वाण के पश्चात् यह प्रथम गुरु पूर्णिमा मुंगेर के संन्यास पीठ में मनाई जा रही है । मुंगेर के पादुका दर्शन में इस पावन महोत्सव को मनाना मुंगेर के लिए एक विशेष अवसर है । गुरु जी का बिहार से एक विशिष्ट सम्बन्ध था । अपने परिव्राजक जीवन में 1956 में वे पहली बार मुंगेर आए । उन्होंने यहाँ की आध्यात्मिक ऊर्जा का अनुभव किया और यहाँ पादुका दर्शन में जो गोल भवन (पूर्व नाम आनन्द भवन) आप देख रहे हैं, उसमें उन्होंने अनेक साधनाएँ कीं । चातुर्मास साधना उनमें से एक थी ।

पूरे देश में भ्रमण करते हुए, अनेक शिष्यों ने उन्हें आश्रम बनाने, अनेक सुविधाएँ प्रदान करने का आश्वासन दिया; परन्तु उन्हें आभास हो गया था कि मुंगेर विश्व योग आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु होगा । अत: उन्होंने गुरु एवं दैवी आज्ञा के अनुसार मुंगेर में योगाश्रम की स्थापना की । इस आश्रम के निर्माण के मुंगेरवासी साक्षी हैं । सन् 1963 से 1983 तक उन्होंने संपूर्ण विश्व में योग के प्रचार और प्रसार का कार्य किया अपने गुरु के आदेश की पूर्ति के लिए ।

उन्होंने स्वयं को केवल योग तक ही सीमित नहीं रखा । वे कहते थे, ''मैं तो एक संन्यासी हूँ, मुझे आश्रम से क्या लेना देना है ? योग को एक व्यावहारिक रूप देने के पश्चात् वे इस आश्रम को छोड़ कर रिखिया चले गए । रिखिया में उन्होंने अपने गुरु की तीन शिक्षाओं 'सेवा, प्यार और दान' को व्यावहारिक रूप में कार्यान्वित किया । रिखिया में स्वामी जी ने विभिन्न साधनाओं के साथ–साथ समाज के निर्धन, निर्बल और उपेक्षित वर्ग के उत्थान का कार्य सेवा, प्यार और दान के रूप में किया ।

20 वर्षों के पश्चात् सन् 2009 में जब इस कार्यक्रम ने आन्दोलन का रूप ले लिया; तो उन्होंने मुझे जुलाई के माह में बुलाया । उन्होंने कहा, ''अब गंगादर्शन का कार्य भार तुमने 2008 में तीसरी पीढ़ी अर्थात् स्वामी सूर्यप्रकाश को सौंप दिया है । तुम अपना परिव्राजक जीवन समाप्त कर दो और एक परमहंस संन्यासी की भाँति एक स्थान पर रह कर मेरे संकल्प को मूर्तरूप दो ।''

संन्यास पीठ – मेरे गुरु का तीसरा संकल्प था – संन्यास पीठ की स्थापना । उन्होंने मुझे इस पीठ की स्थापना एवं विकास के लिए (अगले 20 वर्षों तक के) स्पष्ट निर्देश दिए । सन् 2009 के दिसम्बर माह में एक योगी की भाँति उन्होंने अपने प्राणों का ऊर्ध्वगमन किया और

स्वेच्छा से एक शुभ मुहूर्त में महासमाधि ग्रहण की । यह कार्य मेरे मन की उपज नहीं है अपितु मेरे गुरु का आदेश है । उनकी महासमाधि के ठीक एक वर्ष के पश्चात् उनकी प्रथम पुण्यतिथि को यह स्थापना बाकायदा सार्वजनिक तौर पर उद्घोषित की गई ।

हम मानते हैं कि संन्यास पीठ बिहार योग पद्धति का एक अभिन्न अंग है । बिहार योग पद्धति व्यक्ति के संपूर्ण विकास पर केन्द्रित है । यह पद्धति मन, बुद्धि और मस्तिष्क को संतुलित करने की कला का विकास करती है । राजयोग के प्रणेता महर्षि पंतजलि ने मन को व्यवस्थित करना एवं जीवन में उन्नति करना ही योग का उद्देश्य बताया है । उन्होंने कहा, 'योग: चित्तवृत्ति निरोध:।' वास्तव में राजयोग के नियमित अभ्यास से तुम अपने चंचल मन को शान्त कर पाओगे । ऐसे व्यक्ति की आंतरिक प्रतिभा का विकास होता है; उसका हृदय सरल, उदार एवं करुणा से परिपूर्ण हो जाता है । वह अपने उत्थान के साथ–साथ दूसरों के उत्थान के लिए भी कर्म करता है । योग का यह रूप रिखियापीठ में 'सेवा, प्यार और दान' के द्वारा सहज ही दृष्टिगोचर होता है ।

संन्यास पीठ का उद्देश्य – लोग सोचते हैं कि संन्यास पीठ के द्वारा संन्यासी तैयार किए जाएँगे । यह सोच ठीक है; क्योंकि आज विश्व को आवश्यकता है ऐसे संन्यासियों की जो समाज के उत्थान के लिए नि:स्वार्थ भाव से कार्य करें । परन्तु संन्यास पीठ का यह केवल एक अंग है । गुरुजी के अनुसार सद्गृहस्थ भी यहाँ आकर रह सकेंगे और जीवन को आध्यात्मिक ढंग से जीना सीखेंगे । संन्यास एक जीवन शैली, व्यवस्था, चिन्तन एवं दर्शन है । इसको सभी रूपों में समझो । कई लोग संन्यास को गृहत्याग से जोड़ते हैं । हम ऐसा नहीं मानते । कई लोग घर में रह कर भी सेवा और त्याग का आदर्श स्थापित करते हैं । इस पीठ का उद्देश्य है जन–साधारण को आध्यात्मिक संस्कारों एवं चिन्तन विकास करने की क्षमता का विकास करवाना । यहाँ आप 15 दिन, एक माह अथवा दो माह के लिए आ कर रहो और स्वयं को अच्छाई, सात्विक विचारों से युक्त करो ।

गुरुजी ने मुझे कहा, 'निरंजन यही तुम्हारी विरासत है । घर, मकान, सम्पत्ति एक साधु की विरासत नहीं होती हैं, तुम्हें इसी विचारधारा को आगे बढ़ाना है । मैंने उनसे पूछा, 'यह संन्यास पीठ कहाँ बनेगा ? ' मैं इस संन्यास पीठ की स्थापना मुंगेर व रिखिया को छोड़कर किसी तीसरे स्थान पर करना चाहता था । परन्तु स्वामी जी ने कहा, पीठ की स्थापना मुंगेर में ही करो । तुम मुंगेर छोड़ना नहीं ।' मेरे मुँह से एक बात निकल गई, ''आपने भी तो मुंगेर छोड़ा था ।'' उन्होंने कहा, ''मैंने आश्रम छोड़ा था, मुंगेर नहीं । तुम मुंगेर में ही रहना ।''

सच्चा संन्यास क्या है ? – क्या सिर मुड़ाना, गेरु वस्त्र पहनना घर और समाज को त्यागना संन्यास है ? मेरे विचार से नहीं । यदि ऐसा होता तो प्रत्येक गेरु वस्त्रधारी संन्यासी बन जाता । संन्यास एक परम्परा, आदर्श, जीवन शैली और दर्शन है । यह केवल सिर मुड़ाने अथवा गेरु वस्त्र धारण करने तक सीमित नहीं है । हमारे शास्त्रों में संन्यास को अद्वैत दर्शन से जोड़ा गया है। दर्शन एक विचारधारा, चिन्तन है । दर्शन में ज्ञान के साथ–साथ अनुभव भी होता है । उदाहरणतया चीनी को जब आप चखते हो तो उसके स्वाद का अनुभव होता है । स्वाद कुछ समय बाद समाप्त हो जाता है ; परन्तु अनुभव आपके साथ रहता है । यही अनुभव इसे अंग्रेजी के शब्द फिलासफी से अलग करता है । ''

अद्वैत दर्शन

अद्वैत शब्द का अर्थ है केवल एक, कोई दूसरा नहीं । ब्रह्म एक है । सत्य एक है । ईश्वर एक है । लोग अलग–अलग नामों से उसकी चर्चा करते हैं । उदाहरणतया गिरगिट एक है ; यद्यपि विभिन्न समय पर विभिन्न व्यक्ति उसको अलग–अलग रंगों में देखते हैं । संन्यास के लिए अद्वैत दर्शन का ही चयन आखिर क्यों ? भक्ति मार्ग क्यों नहीं ? प्रत्येक संन्यासी की अपनी व्यक्तिगत साधना भजन, कीर्तन, जप इत्यादि हो सकती है ; परन्तु मूल साधना अद्वैत दर्शन की ही है । वह ईश्वर एक ही है । वह सर्वव्यापी है और उसने स्वयं को अनेक रूपों में विभाजित किया है । एक पिता के बच्चों के रूप, रंग, स्वभाव और चरित्र अलग–अलग होते हैं; परन्तु उनमें एक ही मूल तत्व होता है और वह तत्व है पिता का वीर्य। इसी प्रकार उस ईश्वर की ऊर्जा प्रकृति के प्रत्येक प्राणी (फूल, फल, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि) में एक समान है।

हमारा धर्म – मनीषियों ने कहा है, 'वह परमात्म तत्व सर्वव्यापी है और उसी को जानना हमारा धर्म है । प्रत्येक व्यक्ति अपनी मान्यता के अनुसार, जिस रूप में चाहे, उसे जान सकता है ऋषियों ने कहा है ; वह परमात्मा अन्दर, बाहर, चिन्तय अचिन्त्य और व्यापक है । उसी के कारण हमारा अस्तित्व है । उसी एक को पहचानना और उसी एक का अनुभव करना है । यह मात्र एक दर्शन नहीं है अपितु एक आचरण और कर्म भी है । जो अद्वैत चिन्तन को अपनाता है, वही संन्यासी है, साधु है ।

अद्वैत का ज्ञान ईश्वर कृपा से प्राप्त होता है । इस संसार में जन्म लेने के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति माया के अधीन हो जाता है । ईश्वर से पृथक होने के पश्चात् इस माया का नाम योग निद्रा से योग माया हो जाता है । माया का कार्य है मनुष्य के मन को भ्रमित करना । हम संसार में बेटा / बेटी / पिता / पुत्र / माता इत्यादि अनेक सम्बन्ध बनाते हैं । इन सम्बन्धों के

कारण कभी हमे सुख मिलता है तो कभी दु:ख । यह माया हमें आसक्ति और मोह के बंधनों में जकड़े रखती है । जो व्यक्ति अध्यात्म के मार्ग पर चलता है वह माया के कानून को तोड़ता है और मोह एवं आसक्ति के बंधनों से शनै:–शनै: मुक्त होने लगता है । एक संन्यासी माया के समस्त कानून तोड़ता है ।

मनुष्य जीवन का प्रयोजन – उपनिषदों में कहा गया है, ''प्रत्येक मनुष्य को उसके जीवन का प्रयोजन जानना चाहिए । वह प्रयोजन जानने के लिए प्रयास की आवश्यकता है । कुछ लोग डॉक्टर अथवा इंजिनियर बनना चाहते हैं । यह भौतिक लक्ष्य है । प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में अच्छाई एवं सात्विकता की खोज करनी चाहिए । अपने अन्दर के ईश्वरत्व से जुड़ना और उसका अनुभव करना ही मानव जीवन का प्रयोजन है ।

अद्वैत दर्शन के चार बिंदु –

1. जीवन के प्रयोजन को समझो ।
2. आत्मा और परमात्मा के विषय में जो हम जानते हैं, उसे सुनो ।
3. जो जानते हो, उसे साधने का प्रयास करो ।
4. जो साधा है, उसका अनुभव करो ।

ईश्वर का अनुभव – वह ईश्वर तुम्हारे भीतर आत्मा के रूप में अवस्थित (छिपा) है । आत्मा और परमात्मा के भेद को मत देखो । रूप अलग हो सकता है । उदाहरणतया तालाब और सागर का रूप पृथक–पृथक है; परन्तु दोनों में जल एक ही है । जब तुम अपने अन्दर आत्मा का अनुभव करते हो, वही परमात्मा का अनुभव है, केवल रूप में अन्तर है । मैंने अनेक वर्षों ध्यान का वर्णन किया , उसे सिखाया है ; परन्तु ध्यान की उच्चावस्था का अनुभव ५१ वर्ष की आयु में पहली बार किया ।

विभिन्न संप्रदायों का उद्‌भव – उपनिषदों में ये चार तरीके बताए गए हैं । कई लोगों ने इन तरीकों को गलत समझते हुए; परमात्मा से जुड़ने की साधना को केवल धार्मिक कर्मकांड तक सीमित कर दिया है । यह कट्टरवादी विचारधारा है । अत: विभिन्न संम्प्रदायों (शैव, वैष्णव आदि) का उद्‌भव हुआ । उस एक परमात्म तत्व को अपने भीतर जानने, अनुभव करने का प्रयास करो और उसी तत्व को सभी प्राणियों के भीतर देखो । उदाहरणतया जल की 10 बूँदे हैं । वे खट्टे, मीठे, खारे अथवा नमकीन स्वाद वाली हो सकती है ; परन्तु उनमें मूल तत्व जल ही है ।

गुरु परम्परा

हमारे यहाँ गुरु परम्परा को दो भागों में विभजित किया गया है –

1. शंकराचार्य से पूर्व 2. शंकराचार्य और उनके पश्चात् ।

शंकराचार्य से पूर्व – ब्रह्मा, विष्णु, वसिष्ठ आदि अद्वैत वेदान्त के प्रचारक थे । शास्त्रों में कथा आती है कि शंकर ने अमृत अपने शरीर पर मला । शंकर अनादि अव्यक्त और निराकार हैं । घर्षण से उनके शरीर से विष्णु और ब्रह्मा दो साकार रूपों की उत्पत्ति हुई । साकार रूप में आने के कारण वे माया से प्रभावित हुए और उन दोनों में उच्च स्थान (कौन बड़ा है ?) के लिए विवाद उत्पन्न हो गया । इस विवाद को शान्त करने के लिए निराकार परमात्मा शब्दरूप में प्रकट हुआ । उदाहरणतया घड़ा मिट्टी का साकार रूप है और अपने मूल तत्व (मिट्टी) से भिन्न है । नारायण और ब्रह्मा अपने आराध्य भगवान शिव की आराधना करते हैं । वे स्वयं को अपने मूल तत्व से जोड़ना चाहते हैं ।

शंकराचार्य के बाद – शंकराचार्य ने अद्वैत दर्शन का प्रचार स्वयं तथा अपने अनेक शिष्यों के माध्यम से किया । इसी विचारधारा का प्रचार स्वामी शिवानन्द एवं स्वामी सत्यानंद ने किया है। मैं अब इस का प्रयास कर रहा हूँ । इसी दर्शन के द्वारा सत्य की खोज संभव है। ऋषि अत्रि और अनुसूया के तीन पुत्र थे । उनके तीसरे पुत्र दत्तात्रेय थे ।

दत्तात्रेय – वे ब्रह्मा, विष्णु और शिव के संस्कारो से युक्त बालक थे और बचपन से ही विशेष प्रतिभा सम्पन्न थे । 18 वर्ष की आयु में उन्होंने अपने माता–पिता से संन्यास ग्रहण करने की अनुमति माँगी । मोह और आसक्ति वश माता ने दत्तात्रेय को संन्यास की अनुमति नहीं दी । तब दत्तात्रेय ने अपनी माता को ज्ञान दिया और कहा, ''माँ तुम अपनी आसक्ति की दिशा बदल कर ईश्वर की ओर कर दो । अपने मोह को भक्ति में बदलो । अद्वैत विचारधारा का चिन्तन करो । यह चिन्तन भौतिक जीवन को भी सुव्यवस्थित करता है एवं जीवन में आध्यात्मिक विचारधारा स्वयं पनपती है ।

द्वितीय दिवस 13-7-11

गुरु एवं संन्यास

गुरु एक असाधारण व्यक्ति – गुरु हम लोगों की भाँति साधारण व्यक्ति नहीं होता है । उसका मन और चेतना संसार की बजाय ईश्वर से सतत जुड़े रहते हैं । साधारण मनुष्य माया के अधीन

होता है जबकि गुरु माया के प्रभाव से मुक्त होता है । गुरु अपना संपूर्ण जीवन ईश्वर के अनुसंधान (खोज) में व्यतीत करता है । गुरु एक संन्यासी होता है ।

संन्यास – संन्यास शब्द की उत्पत्ति दो शब्दों से मिल कर हुई है । वे शब्द हैं – सम् + न्यास । सम् का अर्थ है जोड़ना । न्यास का अर्थ है हमारे पास जो कुछ भी है उसे एक प्रयोजन हेतु प्रयोग करना । ऐसा व्यक्ति अपनी क्षमताओं एवं प्रतिभाओं को ईश्वरार्पित करता है और ईश्वर प्रेरणा से कार्य करता है । जो व्यक्ति संन्यास की मानसिकता, संस्कार, मर्यादा, आदर्श और दर्शन अपनाता है, वही संन्यासी है । संन्यास का दर्शन है, उस ईश्वर की छवि को हर व्यक्ति में देखना और यही अद्वैत दर्शन है । यह केवल आध्यात्मिक विचारधारा नहीं है अपितु सन्तों ने इसको अपने जीवन में अपनाया है । उदाहरणतया रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है, सिया राममय सब जग जानि ।' जो व्यक्ति एक पशु, पक्षी, दानव, चाण्डाल में उस ईश्वर को देख सकता है, उसने ही इस दर्शन को आत्मसात किया है ।

अनेक सन्तों ने इस दर्शन की व्याख्या अलग–अलग तरीके से की है । स्वामी सत्यानन्द कहते थे, ''यदि तुम अपनी छवि को दूसरों में देख सकते हो, तो वह आत्म भाव है । यदि तुम ऐसा करोगे तो ईश्वर दर्शन अवश्य होगा । जो प्रकाश मुझमें है, वही तुझमें है । उसी तत्व का दर्शन सभी रूपों में करुँगा ।'' हम सब के अन्दर वह परमात्म तत्व छिपा है और उसी की खोज हमें करनी है । यही हर मनुष्य का पुरुषार्थ है । शास्त्रों में चार आश्रमों का वर्णन आता है । 1) ब्रह्मचर्य 2) गृहस्थ 3) वानप्रस्थ 4) संन्यास । विभिन्न अवस्थाओं के कर्तव्यों को निभाते हुए, उस ईश्वर का अनुभव प्राप्त करने का प्रयास करना है । यही हर मनुष्य का पुरुषार्थ है ।

ईश्वर और माया

उस ईश्वर की तीन उपाधियाँ है –

1. वह सर्वव्यापक है – जिस प्रकार ब्रह्माण्ड के प्रत्येक स्थान पर वायु विद्यमान है, उसी प्रकार वह ईश्वर सृष्टि के कण – कण में व्याप्त है । हवा जब चाहे, जहाँ चाहे जा सकती है ।
2. वह सर्वशक्तिमान है ।
3. वह सर्वज्ञ है ।

कहानी – एक बार एक महात्मा ने अपने शिष्यों की परीक्षा लेने के लिए सबको बुलाया । उन्होंने सब शिष्यों को एक–एक केला दिया और कहा, ''तुम लोग ऐसी जगह जा कर केला

खाओ जहाँ तुम्हें कोई देख न सके ।'' सब शिष्य इधर–उधर चले गए । किसी ने जंगल में, द्वार के पीछे, पेड़ के ऊपर चढ़ कर केला खा लिया । एक शिष्य केला लेकर वापस आ गया । उसने कहा, '' मैं केला नहीं खा सका क्योंकि कोई भी स्थान ऐसा नहीं है जहाँ ईश्वर उपस्थित न हो ।'' महात्मा यह सुन कर बहुत खुश हुए और बोले, ''तुम ने ही मेरी शिक्षाओं को पूरी तरह आत्मसात किया है ।''

वह सर्वशक्तिमान है – एक ही तत्व, शक्ति, ऊर्जा सृष्टि के कण–कण में है उदाहरणतया धूल, फूल के कण, कीटाणु एवं मानव में ईश्वर एक ईकाई के रूप में व्याप्त है । जहाँ देखो प्रभु जी की माया ।

सर्वज्ञ – वह सब कुछ जानता है । जो व्यक्ति इन तीन अवस्थाओं को समझ सकता है, वही अद्वैत का साधक है ।

माया और उससे मुक्ति

साकार और माया – जब साकार की उत्पत्ति होती है तो वह शरीर की माया में बन्ध जाता है । सन्त कबीर ने कहा, ''जल में कुम्भ, कुम्भ में जल; फूटहि कुम्भ जल जल ही समाना ।'' तालाब में एक पानी के घड़े को जो ऊपर से अच्छी तरह सील बन्द है छोड़ दिया जाए तो उस घड़े का पानी उसके टूटने से ही बाहर निकलेगा । हमारा भी वही हाल है । ईश्वर शरीर के बाहर भी है और अन्दर भी है । फिर हम उसका अनुभव क्यों नहीं कर पाते ? विषयों के आकर्षण और इन्द्रियों के बन्धन ही हमें उस ईश्वर के अनुभव से वंचित कर देते हैं । प्रत्येक (साकार रूप) व्यक्ति माया के अधीन रहता है । और माया का पहला डंडा होता है अंहकार का । ''मैं'' शब्द व्यक्तिगत अंहकार का प्रतीक है । सुख, दुख, मान, सम्मान का चिन्तन भी अंहकार के फलस्वरूप ही है । 'मैं चाहता हूँ । मैंने प्राप्त किया । स्वयं को आप अभाव ग्रस्त महसूस करते हो । जो मिल जाता है उसे अपना मान कर पकड़ कर रख लेते हो । जीवन में आसक्ति की उत्पत्ति अंहकार के कारण ही होती है । अंहकार बढ़ने से आसक्ति बढ़ती है और इससे माया का बंधन दृढ़ होता जाता है ।

माया से मुक्ति कैसे ? अद्वैत दर्शन के द्वारा तुम स्वयं को माया से मुक्त करो । अपने जीवन को अच्छाई, सद्गुण और सद्व्यवहार से जोड़ो । शास्त्र कहते हैं, सत्य एक ही है, उसका आश्रय करो । जीवन में द्वैत कम करने से घृणा, द्वेष, हीनता और आसक्ति से मुक्ति मिलती है । साधना के द्वारा द्वैत को कम किया जा सकता है । घर में यद्यपि अनेक कमरे होते हैं, फिर भी घर बैठे –बैठे मन ऊब जाता है । इसी प्रकार हमें माया के घर से बाहर निकलना है।

अपना ध्यान विषयों से हटाओ । अपने कर्मों को ईश्वर को अर्पित करो । जब आप पूजा–पाठ करते हो और फल की कामना करते हो तो वह तुच्छ कर्म हो जाता है । प्रत्येक आराधना तीन प्रकार की हो सकती है । जो हवन और आराधना भोग विषयों की प्राप्ति के लिए किए जाते हैं वह तामसिक है । जो आराधना किसी इच्छा की पूर्ति के लिए की जाती है, वह राजसिक है । जो हवन और आराधना ईश्वरानुभूति एवं आत्मोन्नति के लिए किए जाते हैं वह सात्विक है । जिस भूमि पर ऋषि, मुनि ईश्वरानुभूति के लिए हवन करते हैं उसे सात्विक भूमि कहा जाता है । इसीलिए कहा जाता है कि यदि ईश्वर में भक्ति है तो किसी तीर्थ में जाकर यज्ञ करो । जब यह मन माया के साथ मिल जाता है तो भोगी कहलाता है और यह मन ईश्वर चिन्तन में रस लेता है तो योगी कहलाता है ।

गुरु आज्ञा का महत्व – माया की शक्ति बहुत प्रबल है । यदि व्यक्ति गुरु की आज्ञा का अक्षरक्षः पालन करता है तो माया का बंधन टूट सकता है । शिष्य गुरु का डण्डा खाना नहीं चाहता है । गुरु आज्ञा का पालन करने के लिए स्वयं को तैयार नहीं कर सकता ।

दत्तात्रेय की शिक्षाएँ

दत्तात्रेय विश्व के प्रथम परमहंस थे और अद्वैत दर्शन के प्रचारक थे । वे विशेष संस्कारो से युक्त प्रतिभावान बालक थे । 18 वर्ष की उम्र में जब उन्होंने गृह त्याग करके संन्यास ग्रहण करने की अनुमति माँगी तो उनकी माता अनुसूया विचलित हो उठी । वे कहने लगी, ''तुम कहाँ रहोगे ? क्या खाओगे क्या पहनोगे ? तुम आश्रम में रह कर ही तपस्या करो'' । परन्तु दत्तात्रेय ने माँ को कहा, ''आपको किस चीज से मोह है ? यह मन और आत्मा तो आप देख नहीं सकती । आप का मोह तो इस शरीर से ही है । यह शरीर तो केवल एक वस्त्र मात्र है । यदि इस चमड़ी को उतार दो तो सबका शरीर अन्दर से (रक्त, मज्जा, माँस और हड्डी आदि) एक जैसा ही तो है ।'' ऐसा कह कर उन्होंने माँ को चमड़ी हटा कर शरीर की एक झलक कुछ क्षण के लिए दिखाई । माँ ने कहा, ''बेटा मैं मोहग्रस्त हूँ । मुझे उपदेश दो ।'' तब दत्तात्रेय ने कहा, ''सत्य ही जीवन का मूल तत्व है । तुम स्वयं को शरीर से नहीं आत्मा से जोड़ो । यह मन ही बंधन अथवा मोक्ष का कारण है । जब यह मन गुणों के साथ जुड़ता है तो राग, द्वेष, काम, क्रोध, मद एवं लोभ की उत्पत्ति होती है । जब यह मन आत्मा से जुड़ता है तो इस में द्रष्टा भाव उत्पन्न होता है और यह सदा समता की अवस्था में रहता है ।

आसक्त होना मन का स्वभाव है । यह रूप, नाम, गुण से जुड़ता है । तुम इसे अपने आराध्य की ओर मोड़ दो तो यह तुम्हें मोक्ष दिलवाएगा । स्वामी सत्यानन्द कहते थे, ''कोई भी आसक्ति से मुक्त नहीं हो सकता । उदाहरणतया एक बाल्टी स्वच्छ जल में यदि कुछ बूंदें काली स्याही की डाल दी जाती हैं तो पानी भी काला हो जाता है । आसक्ति जीवन के पानी की बाल्टी में काली स्याही की भाँति है । तुम चाह कर भी पानी की बाल्टी में से स्याही को अलग नहीं कर सकते हो । उसी प्रकार आसक्ति से मुक्ति सम्भव नहीं है । उस पानी की बाल्टी में तुम और पानी डालते जाओ । एक समय ऐसा आएगा जब वह पानी पुन: स्वच्छ दिखाई देगा । तुम अपने परिवार के सीमित दायरे से निकल कर दूसरे अनजान लोगों को भी अपने परिवार का एक अंग बनाओ । विश्व प्रेम की भावना जागृत करो । ''

दत्तात्रेय ने माँ को कहा, ''माँ, तुम भगवान के भक्तों का संग करो । भक्तों का संग करने से तुम्हारे अन्दर श्रद्धा एवं विश्वास उत्पन्न होंगे । तुम माया के प्रभावों एवं परिणामों से मुक्त हो सकोगी । रामायण में गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है, ''प्रथम भगति संतन कर संगा ।'' श्री मद्भागवत् में भी भक्ति के दो पुत्रों (ज्ञान और वैराग्य) की चर्चा आती है । जीवन में भक्ति के प्राप्त होने से वैराग्य उत्पन्न होता है और माया के बंधन से मुक्ति प्राप्त होती है । दत्तात्रेय ने गुरुभक्ति को सर्वोत्तम भक्ति बताया है । गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के पश्चात् तुम गुरु मंत्र का जप करो । गुरु मंत्र का आश्रय लेने से जीवन में अनेक बार तुम्हारे संकट भी टल जाते हैं । गुरु तुम्हारी रक्षा भी करते हैं । गुरु साकार हैं । साधारण मनुष्य के लिए साकार की भक्ति करना सरल होता है । अत: जीवन में प्रथम भक्ति गुरु की करनी चाहिए । द्वितीय भक्ति अपने आराध्य की करो । एक सिद्ध पुरुष सरलता से ईश्वर भक्ति कर सकता है । माया का बंधन तुम्हारी ऊर्जा को सीमित कर देता है ।

दत्तात्रेय एक संन्यासी – माता अनुसूया ने दत्तात्रेय को अपने गुरु के रूप में स्वीकार किया । वे विश्व के प्रथम परमहंस थे । हम लोग उसी परम्परा में आते हैं । दत्तात्रेय ने व्यापक रूप से मंत्र दीक्षा प्रदान की । उनके लिए कोई बड़ा अथवा छोटा नहीं था । वे ब्राह्माण और चाण्डाल को एक समान समझते थे । उन्होंने हजारों, लाखों व्यक्तियों के आध्यात्मिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त किया । साधु समाज आज भी उनके सामने नतमस्तक है ।

आदिगुरु शंकराचार्य

आदिगुरु शंकराचार्य विशेष संस्कारों से युक्त प्रतिभावान बालक थे । 6-7 वर्ष की उम्र में ही उन्होंने एक नदी का मार्ग बदल दिया । एक बार वह भिक्षा माँगने के लिए गए । एक स्त्री ने उनको कहा, ''मेरे घर में केवल एक आँवला ही है । और कुछ भी खाने के लिए नहीं है । यह आँवला मैं आपको देती हूँ ।'' शंकराचार्य उस स्त्री और उसके परिवार की निर्धनता को देखकर द्रवीभूत हो गए । उन्होंने ईश्वर से प्रार्थना की । उनकी प्रार्थना के फल स्वरूप उस घर पर सोने के सिक्कों की वर्षा होने लगी । इस प्रकार उनकी दरिद्रता दूर हो गई । यद्यपि उनके पास दैवी शक्तियाँ थी, फिर भी वे एक साधारण जीवन व्यतीत करते थे ।

आठ वर्ष की अल्प आयु में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया । वे अद्वैत दर्शन के प्रचारक थे । वे न केवल सुधारक थे अपितु उन्होंने सब संन्यासियों को जोड़ने का कार्य भी किया । उन्होंने ब्रह्म सूत्र पर व्याख्यान लिखे । वे केवल ब्रह्म को पुरुष रूप में मानते थे वे शक्ति के अस्तित्व को बिल्कुल भी नहीं मानते थे । उनकी सोच को सुधारने के लिए माँ पार्वती और भगवान शिव ने एक लीला रची । वाराणसी में शंकराचार्य हर रोज़ स्नान करने के लिए मणिकर्णिका घाट पर जाते थे । एक दिन माता पार्वती भगवान शिव का सिर गोद में लेकर उसी रास्ते पर बैठ कर विलाप करने लगी । शंकराचार्य ने करुणायुक्त शब्दों में प्रार्थना की, ''माँ, इस शव को रास्ते से हटा दो ।'' माँ पार्वती ने कहा, ''बेटा, मैं इस शव को कैसे हटाऊँ ? इसमें तो शक्ति ही नहीं हैं ।'' कुछ क्षण पश्चात् शिव और पार्वती दोनों ही वहाँ से अदृश्य हो गए । शंकराचार्य को एक अनिवर्चनीय आनन्द की गहन अनुभूति हुई । वे समझ गए कि वे दम्पत्ति भगवान शिव और माँ पार्वती थे और उनको शक्ति के अस्तित्व का बोध कराने के लिए ही उन्होंने यह लीला रची थी । शंकराचार्य ने शक्ति के अस्तित्व को स्वीकार किया, अपनी गलती का अनुभव किया । देवी माँ की कृपा से बाद में उन्होंने सौंदर्य लहरी एवं आनन्द लहरी के 103 श्लोकों की रचना की । सौंदर्य लहरी के प्रथम श्लोक में उन्होंने लिखा है, ''शक्ति के बिना शिव शव हैं ।''

माँ पार्वती और भगवान शिव की कृपा से उन्होंने दशनामी संन्यास परम्परा की स्थापना की और अद्वैत दर्शन को प्रचारित किया । हम लोग इसी परम्परा के अन्तर्गत आते हैं । समाज के लोग सोचते थे, पढ़ाई नौकरी, परिवार पालना आदि ही केवल जीवन है । शंकराचार्य ने लिखा है, '' पुनरपि जन्मं, पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम् ।'' उन्होंने कहा, 'परमात्मा को जानना ही इस मनुष्य जीवन का लक्ष्य है । हर व्यक्ति को उस ईश्वर का स्मरण

करना चाहिए और उससे मिलन का प्रयास करना चाहिए । सब जीवों में एक ही ईश्वर तत्व है, कोई छोटा अथवा बड़ा नहीं है । यही अद्वैत दर्शन है ।

तृतीय दिवस – 14-7-11

परमगुरु स्वामी शिवानन्द सत्यकथा

बाल योग मित्र मण्डल की एक कन्या का उद्‌बोधन –

कल आदि गुरु शंकराचार्य के जीवन और उनकी शिक्षाओं के विषय में आपने सुना । २० वीं सदी में जनसाधारण के आध्यात्मिक उत्थान के लिए परमगुरु स्वामी शिवानन्द जैसी महान विभूति का जन्म हुआ । उनकी जीवनी पढ़ने से हम समझ सकते हैं कि बचपन से ही अध्यात्म का बीज उनमें फलित होने लगा था । उन्होंने ऋषिकेश में कठोर तपस्या की और दिव्य जीवन संघ की स्थापना की ।

एक बार आश्रम में कुछ विशिष्ट अतिथि बहुत सारा प्रसाद ले कर आए । स्वामी जी ने अपने शिष्य आत्माराम को बुलाया और प्रसाद देने की मुद्रा बनाई । परन्तु उन्होंने प्रसाद उसे न देकर अपने मुँह में डाल दिया । थोड़ी देर बाद पुन: स्वामी जी ने आत्माराम को प्रसाद देने के लिए बुलाया; परन्तु इस बार भी उसे प्रसाद न देकर अपने मुख में डाल लिया । समस्त उपस्थित भक्त जन हँसने लगे । आत्माराम हतप्रभ हो गया, स्वामी जी का यह व्यवहार देखकर। तीसरी बार जब स्वामी जी ने आत्माराम को प्रसाद लेने के लिए बुलाया तो वह कुछ क्षणों के लिए ठिठक गया । सोचने लगा, 'पता नही, इस बार भी स्वामी जी मुझे प्रसाद देंगे या नहीं ? फिर कुछ सोच कर वह स्वामी जी के पास चला गया । इस बार स्वामी जी ने प्रसाद की पूरी थाली ही आत्मा राम को दे दी । यह उनकी एक लीला थी । अनेक बार जब गुरु हमारी इच्छा पूरी नहीं करते तो हम ठगे से रह जाते हैं । गुरु से नाराज़ भी हो जाते हैं । परन्तु गुरु की दृष्टि कहीं और होती है । वे हमें हमारी आशा से कहीं अधिक देना चाहते हैं ।

सत्संग

परमगुरु स्वामी शिवानन्द – शिव जी के अवतार –

पिछले दो दिनों में आपने संन्यास परम्परा, गुरु परम्परा एवं दत्तात्रेय तथा आदि शंकराचार्य की शिक्षाओं के विषय में श्रवण किया । आज 14 जुलाई विशेष दिन है । इस दिन सन् 1963 में परमगुरु स्वामी शिवानन्द महासमाधि में लीन हुए थे । आज का दिन हम उनकी शिक्षाओं को समर्पित करेंगे । वे आध्यात्मिक अग्नि से परिपूर्ण थे । हर व्यक्ति के जीवन में आध्यात्मिक

जागरण का समय निश्चित होता है । पेड़, पौधे, फल एवं फूल समय आने पर ही फलते–फूलते हैं । पूर्वजन्म के सिद्ध योगी इसी प्रकार अवतरित होते हैं । स्वामी शिवानन्द की वंश परम्परा में अप्पय्या दीक्षितार एक महान संत हुए जिन्होंने कई ग्रन्थों की रचना की । भगवान शंकर ने उनको स्वप्न में दर्शन दिए और कहा, ''मैं तुम्हारे वंश में सातवीं पीढ़ी में जन्म लूँगा । '' वही बालक के रूप में उनके वंश में अवतरित हुए । स्वामी जी के बचपन का नाम कुप्पुस्वामी था । बचपन से ही उन्हें हिमालय एवं मन्दिरों, देवी देवताओं का आकर्षण था । चिकित्सा विज्ञान का अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने मलाया (मलेशिया) में एक अस्पताल में नौकरी की । वहाँ एक सन्त ने उन्हें 'ब्रह्मविचार' नामक पुस्तक थी । उस पुस्तक के अध्ययन के पश्चात्, वे नौकरी छोड़ कर, अपना अधिकांश सामान दान दे कर, भारतवर्ष कुछ सामान ले कर वापस आ गए । अपना सामान घर वापस भेज कर वे वाराणसी चले गए । घूमते–फिरते वे ऋषिकेश पहुँचे । समर्थ गुरु प्राप्त करने की तीव्र इच्छा उनके मन में थी । ऋषिकेश में स्वामी विश्वानन्द सरस्वती ने उनको एक वृक्ष के नीचे संन्यास की दीक्षा प्रदान की और उनको स्वामी शिवानन्द नाम दिया । उनको दीक्षा देने के पश्चात् उनके गुरु कहाँ चले गए, कोई नहीं जानता । ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान शंकर ही उनको दीक्षा देने के लिए धरती पर आए थे । गुरु के साथ उनका मात्र १५ मिनट का सम्बन्ध था । वे शिव रूप हो गए । ऋषिकेश में परमार्थ निकेतन की एक कुटिया में रहते हुए उन्होंने अनेक वर्षों तक कठिन तपस्या की एवं अनेक साधनाएँ की । सेवा की गहन भावना उनके मन में थी । उनका हृदय, मन और चिन्तन बहुत सरल था । वे कोई कर्मकांड नहीं करते थे ।

उनकी कुटिया के पास एक महात्मा अनेक वर्षों से तपस्या कर रहे थे । वे विधि विधान से देवी माँ की आराधना करना चाहते थे । इस के लिए उनके पास धन नहीं था । उस साधु ने स्वामी शिवानन्द को अपनी इच्छा बताई । 15-20 दिन बाद कुछ युवतियाँ सजी हुए थालियों में श्रृंगार, वस्त्र एवं भोजन का सामान ले कर उस महात्मा के पास पहुँची और कहने लगीं, '' ये सामान देवी माँ की आराधना के लिए स्वामी शिवानन्द ने भिजवाया है ।'' वे महात्मा बहुत प्रसन्न हुए और स्वामी शिवानन्द को धन्यवाद देने के लिए शाम को उनकी कुटिया में आए । स्वामी जी ने कहा, ''मैंने कुछ सामान नहीं भिजवाया, देवी माँ ने स्वयं आपकी पूजा के लिए यह व्यवस्था की है । मुझे तो कोई पूजा/आराधना नहीं आती । मैं जब भी किसी स्त्री को देखता हूँ तो उसको देवी मान कर मानकर मानसिक रूप से प्रणाम कर लेता हूँ । किसी युवती को देखता हूँ तो राधा मान कर उसे मानसिक रूप से प्रणाम कर लेता हूँ ।''

एक कहानी – जब मनुष्य का हृदय सरल होता है, उसमें कोई छल–कपट अथवा वासना नहीं होती, तब ईश्वर की समस्त विभूतियाँ उसके पास स्वयं आ जाती हैं । एक महात्मा ने ईश्वर दर्शन की कामना से तपस्या की । उसकी तपस्या से प्रसन्न हो कर भगवान प्रकट हो गए । भगवान ने कहा, ''वर माँगो ।'' सरल हृदय महात्मा ने वर माँगने से इन्कार कर दिया और चल पड़ा । तब भगवान ने उसकी छाया को वरदान दे दिया । वह महात्मा जहाँ भी जाता, उसकी छाया अगर सूखे वृक्ष पर पड़ती तो वह वृक्ष हरा–भरा हो जाता था; अन्धे व्यक्ति पर पड़ती तो वह व्यक्ति दृष्टिवान हो जाता था । स्वामी शिवानन्द भी ऐसे ही सरल हृदय सन्त थे । वे छल–कपट से पूर्णतया मुक्त थे, उनमें अंहकार लेशमात्र भी नहीं था । उनका सम्पूर्ण जीवन आडम्बर रहित था । वे गरीबों को सतत दान देते रहते थे । बीमारों के उपचार की व्यवस्था करवा देते थे । उनके मन में सदैव दूसरों की सेवा की लगन रहती थी । हमारा दिल कठोर है ; साधना एवं तपस्या के द्वारा इस कठोर हृदय को नरम बनाया जा सकता है । उदाहरणतया कच्चा आलू कठोर होता है । पानी में उबालने से वह नरम हो जाता है ।

प्रेरणा स्त्रोत –पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम आज़ाद एक बार वायुसेना में पायलट बनने की परीक्षा देने गए और उसमें असफल हो गए । वे विषाद ग्रस्त हो कर ऋषिकेश चले गए । गंगा नदी के घाट पर स्वामी शिवानन्द से उनकी भेंट हुई । सत्संग के पश्चात् स्वामी जी ने उन्हें बुलाया और उनके विषाद का कारण पूछा । स्वामी जी ने अब्दुल कलाम आज़ाद को कहा, ''तुम्हारे जीवन में तुम्हें कुछ और मिलने वाला है । तुम्हारे भीतर जो पराजय की भावना है, उसे पराजित करो । निराश, हताश और विषाद ग्रस्त मत हो ।'' इस वाक्य ने उनका जीवन बदल दिया । इस प्रकार अनेक लोग उनसे प्रेरणा लेते थे । स्वामी सत्यानन्द भी कहते थे, ''गिरो, फिर उठो बार–बार । अन्दर के हीन भाव को पराजित करो ।'' जिस प्रकार फूल से आकर्षित होकर मधुमक्खियाँ उसका रस पीने के लिए आती हैं, उसी प्रकार अनेक युवा उनकी तरफ आकर्षित हुए और उनके शिष्य बने ।

स्वामी जी की शिक्षाएँ – आदिशंकराचार्य के चार शिष्य थे । रामकृष्ण परमहंस के एक शिष्य (विवेकानन्द) थे । स्वामी शिवानन्द के अनेक उच्चकोटि के शिष्य थे जिन्होंने समर्पण, भक्ति और संन्यास का आदर्श सम्पूर्ण विश्व में स्थापित किया । स्वामी शिवानन्द कहते थे, ''ध्यान से ईश्वर साक्षात्कार नहीं होता, पहले अपने मन को जानो, उसे शुद्ध करो । अपने अन्दर १८ गुणों को लाओ । आध्यात्मिक ऊर्जा को जाग्रत करो ।''

1. तनावों के प्रति सजग बनो । स्वयं को चिन्ताओं से मुक्त करो । मानसिक शान्ति और सौम्यता प्राप्त करो ।
2. दैनिक आराधना, साधना नियमित रूप से करो ।
3. निराभिमानी बनो । अभिमान समाप्त नहीं होगा, परन्तु उसे कम करने का प्रयास करो ।
4. छल–कपट को अपने अन्दर से निकालो ।
5. सरलता को अपनाओ ।
6. दु:ख और सुख में सम रहो ।
7. मन को स्थिर एवं एकाग्र करो ।
8. प्रसन्न रहो । क्रोध एवं चिड़चिड़ेपन का निराकरण करो ।
9. व्यवहार कुशल बनो ।
10. विनम्र बनो ।
11. सोच, चिंतन एवं कर्म में दृढ़ निश्चय लाओ ।
12. ईमानदारी, शालीनता एवं उदारता को अपनाओ ।
13. सेवा, परोपकार एवं दानशीलता के द्वारा स्वयं को आन्तरिक रूप से पवित्र बनाओ । हर वर्ष एक गुण अपनाओ और उसे सिद्ध करो । बूँद–बूँद से सागर भरता है । इस प्रयास को यदि आप सच्चे दिल से करोगे तो १८ वर्षों में आध्यात्मिक ऊर्जा से युक्त हो जाओगे । अमरत्व की प्राप्ति करोगे । शुद्धि से एकाग्रता प्राप्त होती है और व्यक्ति ईश्वर में समाहित हो सकता है ।

स्वामी जी ने आध्यात्मिक साधना के आठ चरण बताए हैं ।

1. सेवा 2. प्यार 3. दान 4. शुद्धि 5. अच्छे बनो
6. अच्छा करो 7. ध्यान 8. आत्म साक्षात्कार

यह स्वामी शिवानन्द का अष्टांग योग है । यह व्यावहारिक शिक्षा है । अपने जीवन में सेवा को साधना के रूप में करो । अनजानों को भी अपनो की तरह ही प्यार करो । जीवन में दानशीलता अपनाओ । जो कुछ भी तुम्हारे पास है उसका दूसरों में वितरण करो । ये सरल उपाय करने से तुम्हारी स्थाई रूप से शुद्धि होती है । एक स्वार्थी व्यक्ति को समाधि नहीं लग सकती है । आत्म साक्षात्कार तभी संभव है जब तुम्हारे मन का मैल साफ होता है । समाधि के पश्चात् जो

कुछ भी तुमने पाया है उसे जन–साधारण में वितरित करो । समाधि तो तुम अपने स्वार्थ के लिए चाहते हो ।

अंहकार का क्षय – अंहकार के क्षय के लिए उन्होंने तीन चरण बताए हैं

1. आत्मबलिदान – दूसरों के लिए जीना । अपनी प्रतिभा एवं सम्पत्ति का उपयोग दूसरों के उत्थान के लिए करना ।
२. आत्मनिग्रह – जीवन में संयम का पालन करना चाहिए । इन्द्रियों को भोग विषयों के पीछे मत भागने दो ।
३. समर्पण – 'जेहि विधि राखे राम, तेहि विधि रहिए ।' एक कुशल तैराक नदी की धारा के बहाव के साथ–साथ तैरता है । ईश्वर जिस ओर हमें ले जा रहा है, उसी दिशा में चलेंगे, यह दृढ़ निश्चय होना चाहिए । आत्मविश्लेषण, संयम आदि उत्तम साधन हैं अपने जीवन के उत्थान के लिए । स्वार्थयुक्त व्यक्ति को ईश्वर दर्शन कदापि नहीं हो सकता है ।

जीवन शैली में परिवर्तन आवश्यक –उनके साहित्य को पढ़ कर तुम अपने जीवन में साधना के इन व्यावहारिक चरणों को अपनाओ । 18 गुणों (विनय, उदारता आदि) को अपनाने से तुम्हारा व्यक्तित्व आन्तरिक रूप से निखरेगा । ये शिक्षाएँ मूल रूप से अद्वैत दर्शन का ही सिद्धान्त हैं ।

श्री स्वामी सत्यानन्द

श्री स्वामी सत्यानन्द की शिक्षाएँ – मेरे गुरु स्वामी सत्यानन्द ने उनकी इन शिक्षाओं को अपने जीवन में अपनाया था । स्वामी जी की शिक्षाओं का सार है – ''योगी हो कर जग में जीना, जगदीशवर बन सब रस पीना । '' जीवन में जब भोग संतुलित होते हैं तो व्यक्ति योगी बनता है । जीवन में जब भोग असंतुलित होते हैं तो व्यक्ति रोगी बनता है । साधना के विविध चरणों को अपना कर अपने मन, भावना और अन्तर्त्मा के ऊपर पड़ी हुई विकारों की धूल साफ करो। तब तुम्हें अपने अन्दर का चेहरा (प्रकाश) साफ दिखाई देगा । संसार में रहते हुए जब तुम्हें कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है तो तुम विषाद ग्रस्त हो जाते हो । जब तुम्हें जीवन में सफलता मिलती है तो तुम उन्मत्त हो जाते हो । दुख और सुख दोनों को ईश्वर का प्रसाद मान कर साक्षी भाव से देखो । हर परिस्थिति में संतुलित एवं व्यवस्थित रहो । स्वयं को आंतरिक रूप से शुद्ध करो और ईश्वर के साथ जोड़ो । सन् 1956 में जब स्वामी जी ने

राजनाँदगाँव में पण्डितों के साथ शास्त्रार्थ किया तो उन्होंने कहा, ''मैं हर व्यक्ति में ईश्वर को देखता हूँ । सड़क पर जो महिला झाड़ू लगाती है, वह मेरे लिए लक्ष्मी देवी है । जो महिला शौचालय साफ करती है, वह मेरे लिए सरस्वती देवी है । जो दरबान बाहर खड़ा होता है, वह भगवान विष्णु है । उनकी बातों ने सबके अन्तर्मन को स्पर्श किया । रिखिया में वे सदैव कहते थे, भूखे व्यक्ति के अन्दर भी भगवान है और वह भगवान भूखा है । गरीब व्यक्ति के अन्दर का भगवान भी गरीब है और वह उस की दरिद्रता से दु:खी है । उसी ईश्वर के प्रतिबिंब को सब में देखते हुए, सब का ख्याल करते चलो । ज्योत से ज्योत जलाते चलो, प्रेम की गंगा बहाते चलो। योग को मुंगेर अथवा रिखिया तक ही सीमित मत रखो । सेवा, प्यार, ज्ञान की रोशनी से जन–जन का मानस आलोकित करो । भगवान बुद्धि का विषय नहीं है । श्रद्धा और विश्वास का विकास करो ।

श्रद्धा से अनुभव प्राप्त होता है । इस आध्यात्मिक यात्रा में चलते–चलते ईश्वर का दर्शन स्वत: ही हो जाता है । अपने जीवन से दुर्गति का नाश करने के लिए दुर्गा जी के ३२ नामों का नियमित रूप से तीन बार पाठ करो । दुर्गा जी के एक स्तोत्र का पाठ करो । चाहे ४० वर्ष तुम ध्यान करते रहो; परन्तु ईश्वर का दर्शन सम्भव नहीं है। अपने अन्तर में सेवा, प्यार, भक्ति और ज्ञान का दीप जलाओ और प्यार को गंगा के जल की तरह बहने दो ।

चतुर्थ दिवस **15-7-2011**

गुरु पूर्णिमा महोत्सव

गुरुपूर्णिमा के इस सुअवसर पर समस्त शिष्यों का उत्साह देखते ही बनता था । सुबह अढ़ाई (2.30) बजे से उठकर भक्तों का स्नान शुरू हो गया था । गुरु पूर्णिमा से दो दिन पूर्व हम सब को गुरु प्रसाद के रूप में अनेक पुस्तकें, स्वामी शिवानन्द एवं स्वामी सत्यानन्द का चित्र एवं गुरु जी की तस्वीरों से सुशोभित एक टी–शर्ट मिली थी । पण्डाल में जिधर भी नजर जाती थी, गुरु जी के ही दर्शन हो रहे थे । गुरु पूर्णिमा का उत्सव नवनिर्मित संन्यास पीठ के पण्डाल में ही मनाया गया । सुबह 4.30 बजे से समस्त शिष्य, कोई पैदल तो कोई बस अथवा मेटाडोर से पादुका दर्शन के विशाल गेट के सामने पहुँचने आरम्भ हो गए थे । अनेक देशी–विदेशी भक्तों का अनोखा संगम था । अनेक शिष्य इस पावन अवसर पर मन्त्र दीक्षा, जिज्ञासु संन्यास दीक्षा एवं कर्मसंन्यास दीक्षा लेने के लिए तैयार हो कर आए थे ।

4.45 बजे पादुका दर्शन का गेट खोला गया और कतारबद्ध हो कर सब शिष्य धीरे–धीरे अन्दर पहुँचे । पण्डाल की अद्‌भुत शोभा देखते ही बनती थी । एक तरफ दीक्षा वाले शिष्यों के

लिए गेरू, पीली तथा श्वेत चादरें रखी हुई थी । बीच में भूमि पर बैठने वाले भक्तों के लिए स्थान था । बाईं तरफ बहुत सी कुर्सियाँ वृद्ध और अशक्त लोगों के लिए रखी गई थी । ठीक पाँच बजे स्वामी निरंजन पण्डाल में आ गए । पूजा स्थल में तीन भव्य मंच बनाए गए थे । दाईं तरफ 12 संन्यासी बैठते थे और दुर्गा जी के सहस्त्र नाम, आदित्य हृदयं आदि का पाठ करते थे। मंच के पीछे लहरदार काँच पर पीले और नीले रंग से श्री यन्त्रम् बनाया गया था । बीच वाले मंच पर स्वामी जी बैठ कर दुर्गा माँ के सहस्त्र नामों का हवन करते थे । उसके आगे सुसज्जित श्रीयन्त्रम् रखा रहता था । आज उस मंच के आगे चाँदी की गुरु पादुका एक स्टैण्ड पर अलग से रखी गई थी । बीच वाले मंच के पीछे स्वामी शिवानन्द एवं स्वामी सत्यानन्द का बहुत बड़ा तैल चित्र लगा हुआ था । बाई तरफ वाले मंच पर एक तरफ देवी माँ का चित्र था तथा दूसरी तरफ स्वामी सत्यानन्द का चित्र लगा था । इन दोनों चित्रों के मध्य में स्वामी जी के बैठने का स्थान था । यही बैठ कर स्वामी जी समस्त प्रवचन करते थे । इस के पीछे लहरदार कांच पर शिव चक्र हल्के और गहरे नीले रंग से बना हुआ था ।

स्वामी जी ने श्री यन्त्रम्, देवी माँ और गुरुजी के चित्रों के समक्ष एक दीपक प्रज्ज्वलित किया और अगरबत्ती जलाई । उसके पश्चात् वे बीच वाले मंच पर आकर बैठ गए । जैसे ही वे बैठे, दुर्गा सहस्त्रनामावलि के पाठ के लिए सब तैयार हो गए । पृष्ठ संख्या की उद्घोषणा करने के पश्चात् संन्यासियों ने एक निश्चित गति से पाठ प्रारम्भ कर दिया । हम सब उस पाठ के साथ–साथ पढ़ने का प्रयास करते हुए भी पीछे छूट जाते थे । ठीक आधे घंटे में एक बार सहस्त्रनामावलि का पाठ समाप्त हुआ । स्वामी जी और समस्त संन्यासियों ने २ मिनट का अवकाश लिया और थोड़ा सा पानी पिया । तीन बार यह पाठ हुआ और 6.30 बजे पूर्णाहूति हुई । पूर्णाहूति के पश्चात् 24 बार सत्यानन्द गायत्री (ऊँ परमहंसावधूताय विद्महे ; सत्यानन्दाय धीमहि ; तन्नो गुरु प्रचोदयात्) का पाठ किया गया । तीन बार आदित्य हृदयम् का पाठ किया गया । मृत संजीवनम् कवचम् और चण्डी कवच का पाठ एक–एक बार हुआ । अन्त में स्वामी जी ने देवी माँ के एक स्तोत्र का गान किया ।

स्वामी जी ने इस अवसर पर कहा, ''आज हम स्वामी सत्यानंद की महासमाधि के पश्चात् प्रथम गुरुपूर्णिमा मुंगेर में मना रहे हैं । पिछले वर्ष यह गुरुपूर्णिमा रिखियापीठ (जहाँ श्री स्वामी जी ने महासमाधि ग्रहण की तथा जहाँ उनको भूसमाधि दी गई) में मनाई गई थी । मुंगेर

श्री स्वामी जी की कर्मभूमि थी । श्री स्वामी जी की तीन कल्पनाएँ थी । पहली कल्पना थी – बिहार योग विद्यालय जहाँ पर देश–विदेश से लोग योग सीखने के लिए आते हैं । उनको आभास हो गया था कि मुंगेर योग का विश्व केन्द्र बनेगा । सत्यानन्द योग पद्धति हाथ (कर्मयोग), मस्तिष्क (योग के आसन, प्राणायाम एवं ध्यान के अभ्यास) एवं हृदय (नि:स्वार्थ सेवा) के समुचित विकास पर केन्द्रित है । रिखिया पीठ को उन्होंने समाज के पिछड़े वर्गों के उत्थान का केन्द्र बनाया । वहाँ नि:स्वार्थ सेवा कर्मयोग के रूप में की जाती है । यह श्री स्वामी जी की दूसरी कल्पना थी । उनकी तीसरी कल्पना थी – संन्यास पीठ । संन्यास पीठ आज हम अपनी गुरु परम्परा (परमगुरु स्वामी शिवानन्द एवं अपने गुरु स्वामी सत्यानन्द) को समर्पित करते हैं । इस संन्यास पीठ में विश्व कल्याण के लिए न केवल संन्यासी तैयार किए जाएँगे अपितु एक साधारण मनुष्य भी आध्यात्मिक चिन्तन की विचारधारा को अपनाते हुए अपने कर्मों को नि:शेष करने की कला सीख सकता है ।

श्रद्धा और विश्वास का विकास : गुरु पूर्णिमा वास्तव में शिष्य पूर्णिमा है ; क्योंकि गुरु तो स्वयं में पूर्ण है । गुरु पृथ्वी पर ईश्वर की छवि है । प्रत्येक शिष्य अपने जीवन में अमावस्या से पूर्णिमा की यात्रा करता है, अत: संकल्प तो शिष्य को ही लेना पड़ता है । शिष्य के दिल में गुरु के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए; बुद्धि की तिकड़म को कितना झेलोगे ? बुद्धि के द्वारा अनुभव प्राप्त नहीं किया जा सकता । जब तुम गुरु के द्वार पर आते हो तो अपनी बुद्धि को बाहर ही छोड़ दो । आज के दिन प्रार्थना करो कि तुम्हारी श्रद्धा और विश्वास जाग्रत हो । रामचरित मानस में गोस्वामी तुलसीदास ने लिखा है, ''भवानी शंकर वन्दौ, श्रद्धा विश्वास रूपिणे ।'' अपने जीवन में श्रद्धा और विश्वास को विकसित करो । महर्षि अरविन्द ने कहा – आरम्भ में बुद्धि सहायक होती हैं; परन्तु बाद में यही बुद्धि आध्यात्मिक प्रगति में रोड़ा बन जाती है । आज के दिन अपनी अव्यवस्थित (derailed) गाड़ी को पुन: पटरी पर लाने का प्रयास करो । गुरु तत्व को श्रद्धा और विश्वास से प्राप्त किया जा सकता है, बुद्धि से नहीं ।

आज गुरु पूर्णिमा पादुका दर्शन में मनाई जा रही है । सन् 1950 में स्वामी सत्यानन्द ने यहाँ आनन्द भवन में चातुर्मास साधना की थी । यहाँ उनको अनेक आध्यात्मिक अनुभव प्राप्त हुए थे । यह एक सिद्ध स्थान है। हम इस स्थान की ऊर्जा का अनुभव कर पाते हैं । हम तो यहाँ से दूर जाना चाहते थे; परन्तु हमारे गुरुजी ने हमें यहीं रहने का आदेश दिया । सत्यानन्द योग

पद्धति मानव के मस्तिष्क, हृदय और रचनात्मक प्रतिभा के विकास पर केन्द्रित है । आज के युग में प्रत्येक व्यक्ति तनाव, चिन्ता और परेशानी से जूझ रहा है । आज व्यक्ति कभी परिवार, कभी नौकरी और कभी बच्चों की चिन्ता करते–करते ही चिता तक पहुँच जाता है । हम सब संसार में स्वार्थी हैं । भगवान का प्रिय नि:स्वार्थ व्यक्ति है । स्वार्थी व्यक्ति को सेवा करनी चाहिए । उपनिषद में कथा आती है कि एक बार देवताओं, दानवों और मानवों के प्रतिनिधि ईश्वर से मिलने जा रहे थे । रास्ते में बादलों से जोर की ध्वनि हुई दंध्वम्–दंध्वम् । देवताओं ने इस ध्वनि से अपनी इन्द्रियों का दमन करने की शिक्षा ग्रहण की । दानवों ने दया करने की शिक्षा ग्रहण की । मानव ने इस शब्द से देना सीखने की शिक्षा ग्रहण की । आदिकाल से मनुष्य को देने के लिए कहा जाता रहा है । केवल साधना करने से दिल नहीं खुलता है । अपने हाथों का प्रयोग नि:स्वार्थ भाव से सेवा करने के लिए करो । इससे तुम्हारी रचनात्मक प्रतिभा का विकास होगा । साधु एवं संत संसार के उद्धार का कारण होता है । लालची, कपटी गृहस्थ संसार का उद्धारक नहीं है । हमारे अन्दर कामनाएँ और वासनाएँ हैं । हाथों का उपयोग केवल लेने के लिए खुला रहता है । आज–कल के साधु चेला, मान–सम्मान, नाम, यश और धन चाहते हैं । इसलिए लोग उन पर विश्वास नहीं करते हैं । सभी साधु एक जैसे नहीं हैं, कुछ अपवाद भी हैं।

संन्यास जीवन की विशेषताएँ –

एक संन्यासी के जीवन में ३ (बातों) चीज़ों का होना आवश्यक है –

1. ज्ञान – सत्य, धर्म, और न्याय का व्यावहारिक ज्ञान होना बहुत आवश्यक है । पोथी पढ़ कर जो रट लेता है, वह तोता है । ऐसा व्यक्ति बोलता कुछ और है, करता कुछ और है । सच्चे साधु की कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं होता है ।
2. भक्ति – भक्ति एक व्यापक शब्द है । भक्ति के दो पुत्र हैं ज्ञान और वैराग्य । यदि भक्ति है तो वैराग्य भी अवश्यमेव होगा । एक भक्त ईश्वराभिमुख होता है, संसाराभिमुख नहीं । जिस प्रकार सूरजमुखी के फूल का मुख सदैव सूरज की ओर होता है, उसी प्रकार एक शिष्य के मन में श्रद्धा और विश्वास होता है और वह ईश्वराभिमुख होता है ।
3. कर्म में संलग्न रहने की शिक्षा – यदि कोई कहता है, 'कर्म छोड़ दो,' तो वह गलत है । कर्म जीवन का आधार है । खाना–पीना, सोना आदि भी कर्म हैं । कर्म चाहे अपने लिए हों अथवा दूसरों के लिए, उनसे व्यक्ति की सकारात्मक एवं रचनात्मक प्रतिभा का विकास होता है । कर्म को व्यावहारिक रूप से अपनाना अत्यावश्यक है केवल सैद्धान्तिक रूप से नहीं ।

संन्यास पीठ का उद्देश्य – प्रत्येक व्यक्ति में आध्यात्मिक चिन्तन का विकास करना ही इस पीठ का उद्देश्य है । संन्यास पीठ में साधना, भक्ति, कर्म और ज्ञान का समावेश है। जब आप कुछ दिनों के लिए यहाँ आ कर रहोगे तो अच्छे संस्कारों से युक्त हो जाओगे । यहाँ का तरीका शुरु में आपको अच्छा नहीं लगता । लाईन में खड़े हो कर खाना लेना पड़ता है, अपनी थाली स्वयं साफ करनी पड़ती है, अपने कपड़े स्वयं धोने पड़ते हैं । आज व्यक्ति को अंहकार बहुत अधिक तंग करता है । घर में साफ–सफाई नौकर ही करेगा । आप स्वयं नहीं कर सकते, क्यों ? गर्मियों में भी कई लोग गर्म पानी से नहाते हैं । संन्यास पीठ में योग की नहीं अपितु आध्याात्मिक संस्कारों की शिक्षा दी जाएगी । बालयोग मित्र मण्डल के बच्चे नियमित रूप से आश्रम में आ रहे हैं और ये संस्कार अवशोषित कर रहे हैं।

मेरा संक्षिप्त परिचय

मेरा जन्म 3 नवंबर सन् 1959 में अम्बाला छावनी (हरियाणा) में एक मध्यम वर्गीय परिवार में हुआ । बचपन से मुझे अपनी सखियों को पढ़ाई में मदद करना बहुत अच्छा लगता था । अनेक छात्राएँ मेरे नोट्स माँग–माँग कर पढ़ती थीं कालेज तक । तनाव और चिन्ता मेरे स्वभाव के अभिन्न अंग थे । इन्हीं अनावश्यक तनावों और चिन्ताओं के कारण अपचन, कब्ज और कमरदर्द जैसी समस्याएँ मेरे दैनिक जीवन का अभिन्न अंग बन गई । सन् 1993 में, कमरदर्द की अधिकता के कारण मैंने डरते–डरते योग की शरण ग्रहण की, आखिरी विकल्प के रूप में । योगासनों को आस्था, विश्वास और लगन से नियमित रूप से करते–करते, न केवल मेरा कमर दर्द पूर्णतया समाप्त हो गया अपितु सूर्यनमस्कार के अभ्यास (जो आचार्य ने मुझे एक वर्ष बाद सिखाया था) से मेरा तन–मन एक नूतन स्फूर्ति से भर उठा । सन् 1997 में योगाभ्यास करते–करते मेरा आध्यात्मिक जागरण हुआ । गुरु की असीम अनुकम्पा का वरद हस्त मैंने पल–पल अनुभव किया और एक नूतन आनन्द का रसास्वादन किया । मैं बेताबी से उस आनन्द को सब में बाँटना चाहती थी । गठिया वात के रोग से जूझते–जूझते भी मेरी आध्यात्मिक साधना चलती रही यद्यपि वह काफी धीमी हो गई थी । सन् 2001 से सन् 2003 तक मैंने रोग का भयावह रूप देखा जिसने मुझे एक हद तक पराधीन एवं अशक्त बना

दिया था और मैं पहिया कुर्सी में आ गई थी । स्वामी सत्यानन्द की शिक्षओं ने एक मजबूत स्तंभ की भाँति मुझे सहारा दिया और मेरा विश्वास और आत्मबल पग–पग पर बढ़ाया । जब मैं स्वस्थ होने लगी तब मैं संपूर्ण विश्व को बताना चाहती थी कि इस रोग से मुक्ति संभव है, योग के अभ्यासों द्वारा । सन् 2006, अक्टूबर में, मैंने गुरु की असीम अनुकंपा से अपना पहला लेख ''हीलिंग पावर ऑफ फेथ'' अंग्रजी में लिखा । यह लेख सब लोगों ने बहुत पसंद किया । आज परमगुरु स्वामी शिवानंद के वृहद ज्ञान यज्ञ में मैं एक बूँद बन कर उनकी शिक्षाओं को प्रचारित और प्रसारित करने का सौभग्य प्राप्त कर रही हूँ । यह 19 वीं पुस्तक है मेरे लेखन की । मैं जानती हूँ कि मैं केवल और केवल एक यंत्र हूँ गुरु के सशक्त हाथों में । यही भावना मुझे अहंकार से दूर रख पाती है एक हद तक और निन्दा का सामना करने का आत्मबल प्रदान करती है । मेरे जीवन के व्यावहारिक मंत्र हैं –

1. ''अपमान सहो, आघात सहो–सबसे ऊँची साधना'' – स्वामी शिवानन्द ।
2. '' प्रशंसा जहर है और निन्दा तुम्हारा गहना ।'' – स्वामी शिवानन्द ।
3. ''ईश्वर जानता है कि हमें क्या चाहिए । कितना आश्चर्य है कि हम सोचते हैं वह नहीं जानता ।'' – स्वामी सत्यानन्द ।
4. ''ईश्वर का हर विधान मंगलमय है । हे ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।'' – माँ ज्ञान
5. प्रत्येक परिस्थिति और अवस्था के बारे में कुछ सकारात्मक सोचना और कहना ही सफलता का रहस्य है । – स्वामी शिवानन्द ।

अब तक छप चुकी पुस्तकों का संक्षिप्त विवरण

1. सत्संग – 1500 प्रतियाँ
   इस पुस्तक में परमहंस स्वामी सत्यानंद, परमहंस स्वामी निरंजन और रिखिया पीठाधीश्वरी स्वामी सत्संगी के सत्संगों का संकलन है ।
2. बच्चों के लिए योग का महत्व –1000 प्रतियाँ
   इस पुस्तक में मैंने अपने सत्य अनुभवों और बच्चों पर योग के द्वारा किए गए प्रयोगों को संकलित किया है ।
3. संतों के जीवन से सच्ची कहानियाँ – 1500 प्रतियाँ
   इस पुस्तक में स्वामी शिवानंद, स्वामी सत्यानंद और स्वामी निरजंन के जीवन की छोटी–छोटी घटनाओं, गुणों को कहानियाँ के रूप में संकलित किया गया है ।

4. परमगुरु स्वामी शिवानंद – एक श्रद्धांजलि –1000 प्रतियाँ
   इस पुस्तक में स्वामी शिवानन्द की तीन मुख्य शिक्षाएँ सेवा, प्यार और दान को मैंने अपने जीवन में अपनाया और उनके परिणामों के सत्य अनुभवों को संकलित किया है
5. An Autobiography 1000 Copies
   How I fought the worst battle of Rheumatoid Arthritis and came out of it with flying colours with increased empathy, compassion & inner strength has been presented in the small booklet,
6. रोग और मैं
   प्रथम संस्करण – 2000 प्रतियाँ, द्वितीय संस्करण – 1500 प्रतियाँ (भिलाई इस्पात संयंत्र द्वारा मुद्रित)
   सन् 2001 में गठियावात के रोग ने मुझे पहिया कुर्सी में पहुँचा दिया था । इस पुस्तक में मैंने एक प्रयास किया है अपने सच्चे अनुभवों और प्रयासों को संकलित करने का । आज मैं 95% रोग मुक्त होकर यह जन–सेवा का कार्य कर रही हूँ ।
7. गुरु एक तत्व – 2000 प्रतियाँ
   इस पुस्तक में स्वामी शिवानन्द, स्वामी सत्यानंद और स्वामी निरंजन के चरित्र का संक्षिप्त विवरण करने का प्रयास किया गया है ।
8. मेरी कहानी मेरी जबानी–1000 प्रतियाँ
   मैंने गठिया वात के भंयकर रोग पर किस प्रकार विजय प्राप्त की, वही मुख्यत: इस पुस्तक में वर्णित है ।
9. गृहस्थों के लिए योग साधना – 1000 प्रतियाँ
   गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी व्यक्ति अपना जीवन उज्ज्वल बना सकता है, असीम सुख और शांति प्राप्त कर सकता है । यही इस पुस्तक का उद्देश्य है ।
10. आज की त्रासदी – 1000 प्रतियाँ
    कलियुग में प्रत्येक मानव दु:खी, चिन्तित एवं परेशान है । उन दु:खों के कारण और उनसे कैसे बचा जा सकता है, यही इस पुस्तक का उद्देश्य है ।
11. स्त्री एक शक्ति–1000 प्रतियाँ
    स्वामी सत्यानंद की शिक्षाओं पर आधारित इस पुस्तक में स्त्रियों के आत्मबल, आत्मविश्वास को बढ़ाने का एक प्रयास किया गया है ।

12. मेरी आध्यात्मिक यात्रा–1000 प्रतियाँ
अध्यात्म के पथ पर एक गृहस्थ कैसे चल सकता है और अपने जीवन में सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है, यही इस पुस्तक का उद्देश्य है ।

13. मेरा संघर्ष–1500 प्रतियाँ
सेवा के काम में आने वाली बाधाओं का वर्णन मैंने इस पुस्तक में करने का प्रयास किया है । गुरु जी की असीम अनुकम्पा का वरद हस्त मेरा रामबाण अस्त्र है ।

14. क्या पाया मैंने अध्यात्म से –1500 प्रतियाँ
मेरे आंतरिक व्यक्तित्व का आमूलचूल परिवर्तन मेरे गुरु, ईश्वर की असीम अनुकंपा की परिणति है, यही इस पुस्तक में वर्णित है ।

15. मेरे सद्गुरु परहंस स्वामी सत्यानंद–1500 प्रतियाँ
स्वामी जी की कुछ शिक्षाओं और उनके अनोखे दैवी व्यक्तित्व को वर्णित करने का एक लघु प्रयास इस पुस्तक में किया गया है ।

16. योग और शिक्षा – 1500 प्रतियाँ, द्वितीय संस्करण–1500 प्रतियाँ (भिलाई इस्पात संयंत्र द्वारा मुद्रित)
योग के विभिन्न अभ्यासों द्वारा विद्यार्थी किस प्रकार अपनी स्मरण शक्ति एवं एकाग्रता बढ़ा सकते हैं एवं सफलता के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं, इस पुस्तक का उद्देश्य है ।

17. वृद्धावस्था एक अभिशाप अथवा वरदान–2000 प्रतियाँ
वृद्ध अपने जीवन को भरपूर सुख और शान्ति से जी सकते हैं । मानसिक वैराग्य के द्वारा अध्यात्म के सरल उपाय अपना कर प्रत्येक वृद्ध पूर्णता का अनुभव करते हुए इस देह का त्याग करने की तैयारी कर सकता है । यही इस पुस्तक का उद्देश्य है ।

18. सत्संग – 2000 प्रतियाँ
साधना एवं मंत्र के द्वारा एक गृहस्थ संसार में रहते हुए भी असीम सुख, शान्ति और प्रसन्नता प्राप्त कर सकता है । यही स्वामी निरजंनानंद सरस्वती के सत्संगों पर आधारित इस पुस्तक का उद्देश्य है ।

दानदाताओं की सूची

1.	रोहन योग निकेतन	5,000
2.	सुभाष वैद	3,200
3.	गुंजिता सक्सेना	3,000
4.	अमन अग्रवाल	2,100
5.	नीरू पंत	1,000
6.	हिमांशु नूपुर अग्रवाल	500
7.	भाग्या वेंकटकर	250
8.	ललितामणि	250
9.	सरोज अग्रवाल	250
10.	शक्ति धरनी	250
11.	मधु सोनी	250
12.	तमन्ना	250
13.	नारायण प्रसाद गुप्ता	200
14.	सरोज भंडारी	100
15.	तासु दी	100
16.	संजय अरोड़ा	100
17.	अल्पना ओबरॉय	100
18.	अजय कुमार दास	100
19.	अपूर्वा गुप्ता	100
20.	मिली बिशाओ	100
21.	मुरली महेश्वरी	100

आपका अल्प एवं वृहद् दान सहर्ष स्वीकार्य है ।

''दो और देते ही रहो । प्रचुरता में प्राप्त करने का यही रहस्य है । जो कुछ तुम्हारे पास है, उसे दूसरों के साथ बाँटो। मिल बाँट कर रहने से आपके हृदय का विस्तार होता है। शीघ्र ही आत्मज्ञान की प्राप्ति होती हैं आप सबके भीतर ईश्वर का दर्शन करने लगते हैं । यह एक अद्भुत अनुभव है । यही अद्वैत का, एकात्मकता का वास्तविक अनुभव है । ''

– स्वामी शिवानन्द